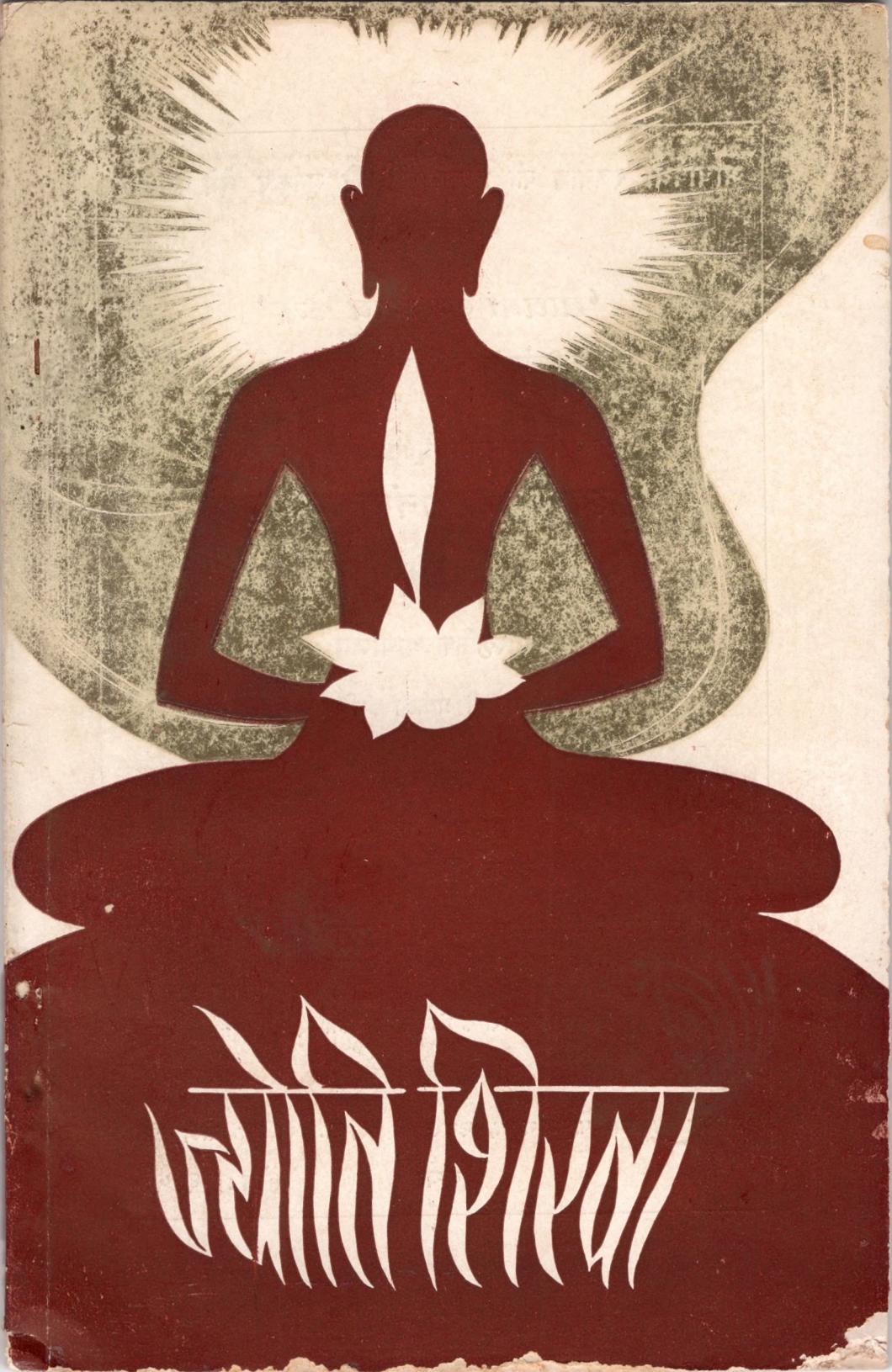
ज्योति शिखा

आचार्यश्री रजनीश की चिंतनधारा को मूर्तरूप देने के लिए
बम्बई नगर में

'साधना एवं ध्यान केन्द्र'

के निर्माण के सहायतार्थ भव्य समारोह

चल-चित्र जगत के मूर्धन्य संगीत-निर्देशक

'कल्याणजी आनंदजी नाइट'

का

सांस्कृतिक आयोजन

तिथि की प्रतीक्षा कीजिए

: स्थान :

षण्मुखानंद हाल,
किंग्ज सर्किल, बम्बई

सभी अध्यात्म-प्रेमियों, उद्योगपतियों, विज्ञापन-दाताओं आदि से इस अनुष्ठान में अधिक से अधिक सहयोग एवं आर्थिक योगदान करने की प्रार्थना है।

विशेष जानकारी के लिए सम्पर्क कीजिए :

जीवन जागृति केन्द्र

एम्पायर बिल्डिंग, पहला माला, कमरा नं. ५३, डा. डी. एन. रोड, फोर्ट,
बम्बई फोन : २६४५३०

जीवन जागृति केन्द्र

एम्पायर बिल्डिंग (वी. टी. स्टेशन के सामने)
पहला मजला, रूम नं. ५३
डॉ. दादाभाई नवरोजी रोड,
बम्बई १ फोन : २६४५३०

ज्योति शिखा ग्राहक नं.

प्रिय मित्र,

आप 'ज्योति शिखा' के ग्राहक हैं। आपका चंदा ———— को समाप्त हो गया है। कृपया चंदा रु.
एक वर्ष मार्च १९७१ तक का तुरंत भिजवाकर आप अपनी प्रतियां सुरक्षित करवा लें और अन्य मित्रों को भी ग्राहक बनवाकर ज्योति शिखा के प्रति अपने प्रेम का परिचय दें।

मंत्री

आचार्यश्री रजनीशजी के सारे साहित्य और पुस्तकों का सर्वाधिकार जीवन जागृति केन्द्र बम्बई के अन्तर्गत सुरक्षित है। प्रकाशन तथा अनुवाद की सुविधा के लिये बम्बई केन्द्र की लिखित अनुमति नितान्त आवश्यक है।

इष्ट मित्रों एवं परिवार सहित अवश्य आइए !

बम्बई में १३ अप्रैल से १७ अप्रैल तक

आचार्यश्री रजनीश

का

क्रांतिदर्शक प्रेरक प्रवचन

विषय : **'समाजवाद से सावधान'**

आप अपना सक्रिय सहयोग एवं अमूल्य सुझाव देकर अनुग्रहीत करने की कृपा करें

सम्पर्क कीजिये : जीवन जागृति केन्द्र, एम्पायर बिल्डिंग, पहला माला, रूम नं. ५३, डा. दादाभाई नौरोजी रोड, बम्बई–१.

फोन : २६४५३०

आचार्यश्री रजनीश की सृजनात्मक जीवन दृष्टि

का

पाक्षिक पत्र

यु क्रां द

मानसेवी सम्पादक :

अजित कुमार

एक प्रति : ६० पैसे ❀ वार्षिक शुल्क : १२ रुपये

देश के कोने कोने में विक्रय एजेन्ट नियुक्त करना है

सम्पर्क करने तथा शुल्क भेजने का पता :

अरविन्दकुमार, सदस्य युक्रांद प्रकाशन समिति,

कमला नेहरू नगर, जबलपुर (म. प्र.) फोन : २९५७

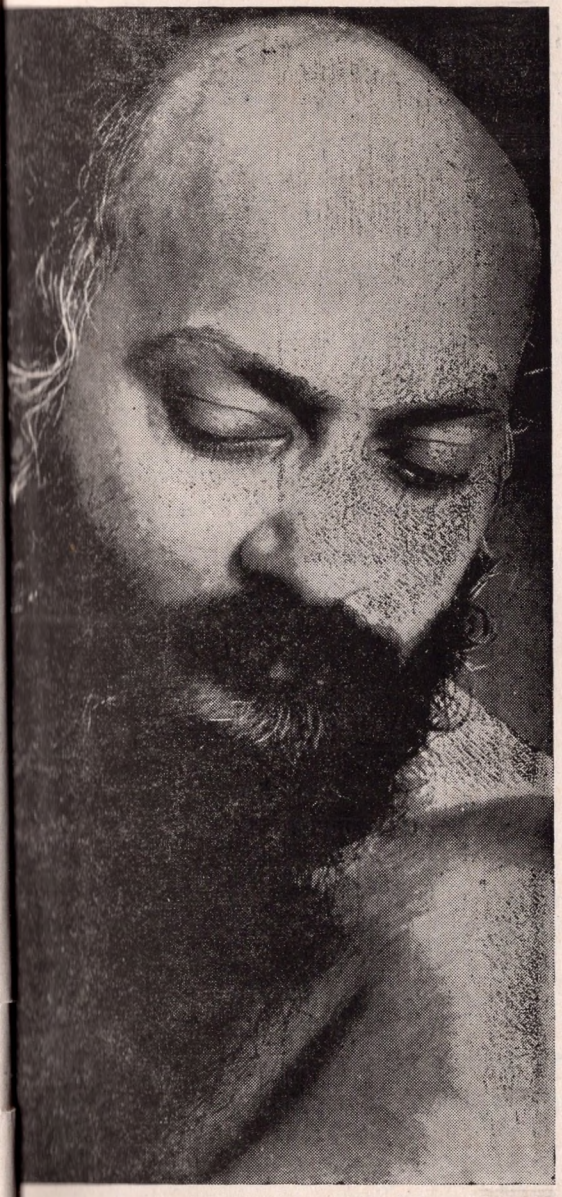

'मैं सजग चिर साधना ले!'

ज्योति शिखा

आचार्यश्री रजनीश की अमृतवाणी का

त्रैमासिक संकलन

★

अंक : १६ वां

मार्च १९७०

★

मान्यक सम्पादक :

महीपाल

प्रो. अरविन्द

प्रकाशन स्थल :

एम्पायर बिल्डिंग (वी. टी. स्टेशन के सामने)
पहला मंजला, रूम नं. ५३,
डा. दादाभाई नौरोजी रोड,
बम्बई–१

फोन नं. २६४५३०

★

मुद्रण स्थल :

स्टेट्स पीपल प्रेस,
फोर्ट, बम्बई–१

★

अनुक्रम

क्रमांक	विषय	संकलक	पृष्ठ
१	एक धर्म कथा	महीपाल	७
२	तर्क के पार . . . बुद्धि के परे . . .	लहरचंद शाह	९
३	ऐसा आदमी जो जाग गया हो	लक्ष्मी बहन	१५
४	'सच्चिदानंद' सत्य की परिभाषा नहीं	शिव	२७
५	जीवन एक सहज धारा	नरेंद्र	३६
६	अतीत का बोझ	निकलंक	५७
७	जिन बूझा तिन पाइयां : प्रश्नोत्तर	हिम्मत जोशी	७६
८	आगामी देशव्यापी कार्यक्रम	. . . . .	९८

वार्षिक शुल्क : रु. ५

एक प्रति : रु. १.२५

त्रैमासिक संकलन
अंक : १६ वां

मार्च
१९७०

ज्योति शिखा

☆ मनुष्य के आध्यात्मिक पुनरुत्थान के लिए समर्पित ☆

एक धर्म कथा

आचार्यश्री ने कहा –

पता है, रामकृष्ण परमहंस कितने सीधे और कितने भोले आदमी थे? वे जब भी बातचीत में, चर्चा में बैठते थे तो अक्सर दोनों पैर जोड़कर पद्मासन की मुद्रा में ही बैठा करते थे। एक बार इसी मुद्रा में किसी ने उनका फोटो खींच कर उनको दे दिया। रामकृष्ण बड़ी देर तक उस फोटो को देखते रहे–अपने ही फोटो को। ... फिर धीरे धीरे मुस्कराये, फिर एकदम प्रसन्न और आनन्दित होकर उस

फोटो को अपने माथे से लगा लिया। और माथे से लगाकर ऐसे विभोर हो गये कि पूछो ही मत। जब किसी ने उनसे पूछा कि बात क्या है, ये क्या कर रहे हैं आप? तो उन्होंने उस फोटो को उसके सामने करते हुए कहा कि देखते नहीं हो (उनका इशारा था उस फोटो की स्थिरता, शान्ति और एकाग्रता की ओर)। और फिर एक बार बड़ी श्रद्धा से माथे से लगाकर कहा ... आहा! समाधि में है ..... समाधि लगी है ..... !!

- महीपाल

* * *

किरन की तरह लुटो, तिमिर से नफरत न करो,
नदी की तरह बहो, तट से मोहब्बत न करो,
उठो पर्वत से मगर बादलों जैसे बरसो,
फूल से खिलो-झरो, कोई वसीयत न करो!

–विश्व

जहां संवाद होता है वहां बोलना खो जाता है, जहां बोलना होता है, वहां संवाद की संभावना कम हो जाती है

संवाद :

तर्क के पार...
बुद्धि के परे...

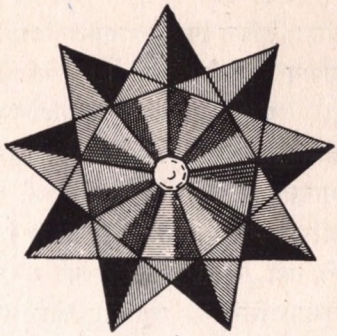

संकलन : लहरचंद शाह

जीवन में सभी कुछ बुद्धि के तल पर नहीं समझा जा सकता है। पहली बात तो यह कि जीवन में सभी कुछ बुद्धि के तल पर नहीं समझा जा सकता। और ऐसा मैं मानता भी नहीं कि सभी कुछ समझे जाने की कोशिश भी उचित है, बुद्धि सभी कुछ समझ सकती है। सीमाएं हैं बुद्धि की, और एक जगह आ जाती है जहां आगे नहीं समझ पाती। जहां सीमाएं आ जाती हैं वहां दो उपाय हैं – या तो हम वापस लौट जायं या हम बुद्धि को छोड़ दें, बुद्धि के ऊपर उठें। निश्चित ही कम्युनिकेशन का जहां तक सवाल है वह वहीं तक संभव है जहां तक बुद्धि की बात है। उसके आगे बुद्धिगत इंटीलेक्चुअल कम्युनिकेशन तो संभव नहीं है, लेकिन 'रेपर्ट' संभव है। 'रेपर्ट' बड़ी और बात है। अगर हम सहानुभूति से किसी दूसरे व्यक्ति की ऐसी बातों को भी समझने के लिए आतुर हैं जो तर्क और बुद्धि की पकड़ में नहीं आती, तो शायद उस सहानुभूति के क्षण में जो बातें भी झलक ला सकती हैं और किसी तल पर संवाद कम्युनिकेशन हो सकता है। लेकिन उस तल पर हुए संवाद के लिए न कोई तर्क है, न तर्क का कोई अर्थ है। अब जैसे रात मैंने सपना देखा। तो मैंने सपना देखा या नहीं, आपके लिए तर्कगत समझाने का मेरे पास कोई उपाय नहीं। मैं कहता हूं, मैंने सपना देखा और आप पूछ सकते हैं कि हम कैसे मानें कि आपने सपना देखा। सपना देखने का भी सपना हो सकता है, सिर्फ आपका ख्याल हो, आप वहम में हों, सुबह आपको लगता है कि आपने देखा, आपने

कभी न देखा हो। तो हमारे पास तर्कगत कोई उपाय नहीं है। अभी भी मेरे सिर में दर्द हो, तो कोई रास्ता नहीं है कि मैं आपको समझा सकूं कि मेरे सिर में दर्द है, और दर्द है तो कैसा दर्द है। एक सहानुभूति तो समझ सकती है मेरी पीड़ा, लेकिन फिर भी वह अनुमान है। बाहर से दर्द को समझाने का कोई बौद्धिक उपाय नहीं है।

एक मजाक मुझे ख्याल आता है। मेरे एक शिक्षक थे। वे वर्ष शुरू होता तो पहली बात विद्यार्थियों से यह कहते थे कि मैं सिर्फ बुखार को बीमारी मानता हूं, पेट दर्द और सिर दर्द को मैं बीमारी नहीं मानता हूं। इसलिए पेट दर्द और सिर दर्द में तो छुट्टी नहीं मिल सकेगी, क्योंकि उनको मैं बीमारी मानता ही नहीं, मैं सिर्फ बुखार को बीमारी मानता हूं। उसको मैं जान सकता हूं। तुम्हारे सिर दर्द का मुझे कोई भरोसा नहीं, तुम्हारे पेट दर्द का मुझे कोई भरोसा नहीं, इसलिए अगर हो भी तो तुम जानो, लेकिन उसके लिए छुट्टी नहीं दे सकता हूं। जब पहली दफा मैं उनकी कक्षा में गया तो सचमुच मैं भी मुसीबत में पड़ गया। मैंने उनसे कहा, आप कह क्या रहे हैं? उन्होंने कहा, मैं मानता ही नहीं कि सिर दर्द है और अगर है तुझे तो मुझे समझाना पड़ेगा। और अगर बौद्धिक रीति से मुझे न समझाया तूने कि सिर दर्द है, तब तक मैं छुट्टी देने को राजी नहीं हूं। समझाने की बात बड़ी कठिन है। नहीं समझाया जा सकता है कि सिर दर्द है, लेकिन फिर भी सिर दर्द है।

जो नहीं समझाया जा सकता है वह इसी कारण नहीं है, ऐसा मानने का कोई उपाय नहीं है। जैसा कि मैंने कहा कि पिछले जन्म का अनुभव है। पिछले जन्म का अनुभव समझाना बहुत मुश्किल है। एक ही रास्ता है समझाने का और वह रास्ता यह है कि जिस भांति मैं पिछले जन्म के अनुभव में गया हूं उस विधि को आपको बताऊं और शायद आप भी सफल हो जायं। और तो कोई उपाय नहीं है। जिस भांति मेरे सिर में दर्द हुआ है एक दीवाल से टकराकर, तो मैं आपसे कहूं कि आप भी सब दीवाल से टकरा लें तो शायद दर्द हो जाय। फिर भी पक्का नहीं है, क्योंकि सभी दीवाल से टकरायें तो भी दर्द हो जाय यह भी पक्का नहीं है। तो इतना ही मैं कह सकता हूं कि पिछला जन्म है, ऐसी मेरी समझ है। और इसके लिए क्या दलील हो सकती है? इसके लिए एक ही दलील मेरे पास हो सकती है वह यह कि जिस विधि से मैं पिछले जन्म में गया हूं वह विधि आपको कहूं। आपको लगे कि देखना है जाकर; तो आप देख लें। जरूरी नहीं है कि मेरी विधि आपका काम कर जाय और

यह भी जरूरी नहीं है कि मेरी विधि से आपको जो अनुभव हो वह आपको सत्य मालूम पड़े या सपना मालूम पड़े, यह भी जरूरी नहीं है। हो सकता है कि आपको लगे कि यह भी एक सपना है जो आपके आगे खुल गया है।

एक महिला मेरे पास कुछ दिन तक प्रयोग कर रही थी। उसमें बड़ी आतुरता थी। जो आपने पूछा है, वही उसने मुझसे पूछा हुआ था—वह कालेज में प्रोफेसर है। उसने मुझसे पूछा कि और सब बातें तो ठीक ह, लेकिन कुछ बातें आप ऐसी कह देते हैं कि वहां बात मुश्किल में पड़ जाती है। एक तरफ आप कहते हैं— दूसरे पर विश्वास मत करो, दूसरी तरफ आप ऐसी बात कहते हैं कि सिवाय विश्वास के उसमें कोई उपाय नहीं है। तो मेरा उससे यह कहना था कि न तो मैं यह कहता हूं कि विश्वास करो, न मैं यह कहता हूं कि अविश्वास करो। इतना ही मान सकते हैं कि कुछ बातें हैं जो यह आदमी कह रहा है जो कि तर्क के भीतर नहीं पकड़ में आती हैं। लेकिन सभी कुछ तर्क के भीतर पकड़ में नहीं आता। मैंने उससे कहा कि प्रयोग करके देखो पहले जन्म के लिए। उसने प्रयोग करना शुरू किया। उसने ६ महीने सच में निष्ठा से प्रयोग किया। उस प्रयोग में कोई एक दिन रात के दो बजे वह आयी और इतनी घबरा गयी थी, इतनी परेशान थी कि उसने कहा– किसी भी तरह भूल जाना है जो मुझे दिखायी पड़ा है, क्योंकि मुझे ख्याल आया कि पिछले जन्म में मैं देवदासी थी किसी मंदिर में और वेश्या का काम करती थी। और जो स्मरण आना शुरू हुआ वह उसके आज के अहंकार को भी पीड़ा और दुखदायी था। फिर वह मुझसे कहने लगी– मैं यह भी चाहती हूं कि यह मुझे याद न आये और मुझे यह भी पक्का नहीं होता है कि यह सच है या सपना देख रही हूं। इसका भी पक्का करना बहुत कठिन है कि यह सपना है तो नहीं। लेकिन सपने और अनुभव के सत्यों की भी जांच करने का निजी सबजेक्टिव उपाय है। रात सपने में मैं खाना खा लेता हूं तब मुझे पता नहीं चलता कि यह सपना है या सच। सुबह जागकर पता चलता था कि सपना था, क्योंकि पेट तो खाली रह गया। रात सपने में सिर दर्द हो और दिन में जागने में भी सिर दर्द हो, तो सपने में पता लगाना मुश्किल है कि जो दर्द हो रहा है वह सच में हो रहा है कि सिर्फ कल्पना है। लेकिन जागने में पता चलता है– शायद कल्पना ही थी। क्योंकि जागने में वह दर्द कहीं नहीं रह गया, नींद टूटते ही खो गया।

पुनर्जन्म के भी स्मरण हैं, वह सपने नहीं हैं क्योंकि दो कारण हैं, चूंकि एक

ही सपने में दोबारा प्रवेश असंभव है। आप एक ही सपने में दोबारा प्रवेश नहीं कर सकते हैं, आप लाख उपाय करें तो उसी सपने को ला नहीं सकते, आपके हाथ के बाहर है। लेकिन पिछले जन्म की स्मृति को आप एक ही स्मृति पर लाख दफा प्रवेश कर सकते हैं और वह ठीक वैसे ही वापस लौटती है जैसे पहली बार दोहरी थी, उसमें कोई फर्क नहीं पड़ता है। यह जो मैं पिछले जन्म की बात कह रहा हूं उसमें कम्युनिकेशन संभव नहीं, एक्सपीरिएंसस संभव हैं। और जब मैं बात कर रहा हूं तो सिर्फ इसीलिए कर रहा हूं कि शायद किन्हीं को ख्याल आ जाय तो वह प्रयोग करें। मेरी इच्छा भी नहीं है कि मेरी बात आप मानें। संदिग्ध होना उचित है और मैं तो यह भी कहता हूं कि आपको भी अनुभव हो जाय तब भी एकदम से मान लें वह उचित नहीं है। तब भी संदिग्ध होना उचित है, क्योंकि कुछ भी नहीं कहा जा सकता। मन इतना अद्‌भुत है और इतना धोखे पैदा कर लेता है कि कुछ भी कहना मुश्किल है। लेकिन यह भी एक धोखा हो जायगा कि हम यह कह दें कि ऐसे कोई तथ्य होते ही नहीं जो कि कम्युनिकेट नहीं किये जा सकते हैं। तो ऐसा मैं मानता हूं कि बहुत कुछ तो संवादित हो जाता है, बहुत कुछ संवाद के बाहर रह जाता है। और जब बहुत कुछ संवादित होता है, तब भी जो सत्य कहते हैं वहीं संवादित नहीं होता, बल्कि शब्दों के आसपास बहुत कुछ संवादित हो जाता है जो कि शब्द नहीं कहते हैं। और जब हम तर्क देते हैं और जब हम तर्क से कुछ ज्यादा समझने की कोशिश करते हैं तब जरूरी नहीं है कि हम जो तर्क से सिद्ध करने जा रहे हैं वह संवादित हो। अक्सर तो यही होता है कि अगर सहानुभूति से दो लोगों ने बात की है, डायलाग किया है, चर्चा की है, तो बहुत कुछ परिधि में संवादित होता है। इतनी सहानुभूति संवाद के लिए पर्याप्त है कि हम एक-दूसरे की संभावना को स्वीकार करके चलें कि ऐसा हो सकता है। इतना भी अगर है तो संवाद हो जायगा। यह मैं नहीं कह रहा हूं कि आपने रिफ्यूज किया था। रिफ्यूज आप नहीं कर रहे हैं, आप एक तथ्य ही कह रहे हैं कि आपको वहां जाकर लगे कि अचानक यहां कोई बात हमारी पकड़ के बाहर छूट गयी, जो हमारी पकड़ में नहीं आ रही है। हमारी पकड़ में भी वही आ पाता है जो हमारा किसी तरह का समान अनुभव हो, नहीं तो पकड़ में नहीं आ पाता।

फिर जब हम भी कुछ सुनते हैं वह वही नहीं होता है, जो कहा गया है। क्योंकि हम वही सुन सकते हैं जो हम सुन सकते हैं। बस फासले बढ़ने शुरू हो जाते हैं। अब यह बड़ी दुर्भाग्यपूर्ण बात है कि शब्द के अतिरिक्त कोई माध्यम नहीं

है और शब्द से बेकार कोई माध्यम नहीं है। शब्द से ही कहना पड़ेगा, अशब्द से कुछ भी नहीं कहा जा पाता, तो जैसे अंधेरे में टटोलते रह जाते हैं। कम्यूनिकेशन बड़े से बड़ा प्राबलम है। और दो आदमियों के बीच, दो व्यक्तियों के बीच शायद प्रेम के किसी क्षण में कोई बात संवादित हो जाती है, बातचीत में संवादित नहीं हो पाती। और जब हम बोल रहे हैं उस क्षण में प्रेम की मनोदशा खोजने की बात मुश्किल हो जाती है। इधर मेरा अपना ख्याल यह है कि जब कि मैं बोल रहा हूं तो किसी न किसी अर्थ में बोलना आक्रमण है, आपके ऊपर एक हमला कर रहा हूं और जाने अनजाने आप डिफेंस की हालत में कुछ इन्तजाम कर लेते हैं और सुरक्षा की तैयारी कर लेते हैं और तब बातचीत चलती रहती है और उसमें बराबर एक संघर्ष बन जाता है बजाय संवाद के। और

वे जो सोते हैं, खो देते हैं, और वे जो जागते हैं केवल वे ही उपलब्ध कर पाते हैं जीवन की सम्पदा को, जीवन के सौन्दर्य को, जीवन के शिव को। ये दो छोटे से सूत्र स्मरण रखना। जीवन एक सपना है और मनुष्य को बनना है एक साक्षी। क्यों कि जैसे ही वह साक्षी बनता है, सपना टूट जाता है और सपना टूटा, तब जो शेष रह जाता है – वही सत्य है

जहां संवाद की स्थिति होती है, जैसे मैं प्रेम के क्षण में किसी को प्रेम करता हूं, उसके पास बैठा हूं जहां कि कोई आक्रामक नहीं है, कोई सुरक्षा का सवाल नहीं है तो वहां शब्द खो जाते हैं; क्योंकि प्रेम इतना महत्वपूर्ण मालूम पड़ता है कि बोलने की कोई जरूरत नहीं रह जाती। जहां संवाद होता है वहां बोलना खो जाता है, जहां बोलना होता है वहां संवाद की संभावना कम हो जाती है। यह कठिनाई है। अब दो प्रेमी संवादित हो सकते हैं लेकिन बोलते नहीं हैं, चुपचाप हो जाते हैं। दो जन बोलते हैं, बोलने की चेष्टा करते हैं, समझने की, सुनने की चेष्टा, समझाने की चेष्टा करते हैं– लेकिन प्रेमी नहीं होते। हमारी पुरानी जो एक धारणा थी वह मुझे मूल्यवान मालूम पड़ती है। गलत शब्द दे दिया था

इसलिए वह गड़बड़ हो गयी थी। हम इस देश में मानते थे कि श्रद्धा के बिना समझना नहीं हो सकता है। श्रद्धा शब्द जरा गलत हो गया है, गलत यात्रा ले ली उसने। लेकिन श्रद्धा का मतलब मेरी दृष्टि में कुल इतना ही होता है कि ऐसे क्षण में कि जब हम बड़े प्रेम से भरे हुए हैं जो कि समझने की आतुरता कम और प्रेम का भाव ज्यादा है– तब शायद संवाद हो सकता है। क्योंकि तब कोई आक्रमक नहीं है और तब कोई डिफेंस में नहीं है लेकिन हम सब हैं। और जब आप एक शब्द उपयोग करते हैं तो आप कहते हैं बहुत बढ़िया है। आप कहते हैं इंटलेक्चुअल है और इंटलेक्ट बहुत छुईमुई है। वह पूरे वक्त सजग है सुरक्षा के लिए भी कि कोई हमला न हो जाय। जरूर उसका काम भी वही है, वह होना जरूरी है। बुद्धि का मतलब यह है कि वह अपनी सुरक्षा करे सब तरफ से। तो वह बहुत सुरक्षा की तैयारी में है। सबसे बड़ा जो डर है उसे, कि उससे विजातीय विचार कोई भीतर न चला जाय उसके। जो उसकी अबतक की मान्यता है, समझ है, एक हार्मनी है उसमें एक विजातीय बात भीतर चली जाय तो उपद्रव खड़ा होगा, परेशानी होगी और किसी तरह का रास्ता खोज लेना पड़ेगा।

जीवन जीने की सम्यक् कला ही तो धर्म है। विचार शून्य होने का अर्थ है बाहर से आये हुए विचार आपके चित्त पर न रह जायं। यदि विचार प्रवाह ठहर जाय तो एकदम पता चलता है कि मैं नहीं हूं, सत्य है। मैं नहीं हूं, परमात्मा है। मैं अत्यंत प्रयोगात्मक बात कह रहा हूं – मानें नहीं, सिर्फ करें और देखें

सत्य सत्य है और आपको जानना है, तो आपको आमने-सामने खड़ा होना पड़ेगा। बीच में प्रतीक लाने का कोई उपाय नहीं

संकलन :
लक्ष्मी बहन

ऐसा आदमी जो जाग गया हो : वही जान सकेगा

एक शब्द है बुद्ध दूसरा बुद्धिमान— दोनों में थोड़ा ही फर्क लगता है। वैसे शब्द की बहुत गहराई में जायें, बिल्कुल प्राचीन से प्राचीन, तो वही मतलब है। लेकिन बुद्ध होने में और बुद्धिमान होने में बड़ा फर्क है। बुद्ध से हम मतलब लेते हैं प्रबुद्ध होने का, एनलाइटेंड होने का, जागा हुआ होने का। बुद्धि से मतलब लेते हैं सोच-विचार का। और मजा है कि इन दोनों बातों में विरोध है। जितना जागा हुआ आदमी होगा उतना कम सोच-विचार करता है। असल में सोच-विचार सबस्टीट्यूट है जागा हुए होने का। एक अंधा आदमी है, उसे इस कमरे से भाग जाना है, तो वह सोचता है दरवाजा कहां है, रास्ता कहां है? पूछता है। उठने के पहले पच्चीस दफे सोचता है कि मैं कहीं टकरा न जाऊं। एक आंख वाला है, वह उठता है और निकल जाता है, वह पूछता नहीं है कि दरवाजा कहां है। वह जो अंधा आदमी है उसको पूछना, सोचना खोजना सब पड़ता है, क्योंकि उसे आंख न होने की वजह से सारे काम करने पड़ते हैं। आंख वाले आदमी से पूछियेगा कि दरवाजा कहां है? तो वह बतायेगा।

निकलता हो तो उसे पता नहीं कि वह दरवाजे से निकल गया। वह निकल ही गया है और उसने न यह सोचा कि यह दरवाजा है, न फिक्र की, न किसी से पूछा, बस निकल गया है। निकल जाना इतना सहज हुआ है कि उसमें कहीं सोच-विचार नहीं आया बुद्धि को। जिस अर्थ में हम वहां शब्द का प्रयोग करते हैं वहां विचार नहीं है, वहां उसका मतलब ऐसा व्यक्ति, जो देख रहा है और निकल गया है। जहां हम बुद्धि का प्रयोग करते हैं वहां बड़ी और बात है। वहां हम यह कह रहे हैं कि जहां हमें दिखायी नहीं पड़ रहा है लेकिन हम सोच-सोच कर, टटोल-टटोल कर निकलने की कोशिश कर रहे हैं। जो देखने वाला कर सका है बिना सोचे-विचारे वह हम सोच-विचार के करने की कोशिश कर रहे हैं। तो ऐसा हो सकता है, बुद्ध तो जागकर बुद्ध होते हैं। उनके पीछे जो अनुयायी होता है वह सोच-विचार के होता है। वह सब सोच-विचार की तैयारी करता है। उसी ढंग का खाना खाता है, उसी ढंग के कपड़े पहनता है, वैसा ही चलता है, बैठता है, उठता है। वह पूछता है बुद्ध से कि कैसे उठते हो आप, कैसे बैठते हो, कैसे सोते हो ? वह सब वैसा ही करता है। वह सब कर लेता है फिर भी पाता है कि बात नहीं घटी। वह घट भी नहीं सकती, क्योंकि वह जो प्रबुद्ध होना है वह बुद्धि का जोड़ नहीं है। असल में बुद्ध होना एक अर्थ में बुद्धि का पूरी तरह असफल होकर टूट जाना है, यानी वह उस क्षण में घटित होगी जहां बुद्धि ने असमर्थता पा ली है। दुनिया सब खोज-बीन करके उस जगह आ गयी जहां थक गयी और जहां उसने कहा आगे हमारी कोई गति नहीं है, वह सब व्यर्थ हो गया, अब कुछ खोजने को बचा नहीं, खोज सकते नहीं, सब कुछ टूट गया। जो बुद्धि की परिपूर्ण असफलता है, वही प्रबुद्ध होने की पहली संभावना है। जहां सब सोच-विचार थक गया, उसने कहा, नहीं कुछ होता है। जहां फिलासफी हार गयी, टूट गयी, गिर गयी —वहां रिलीजन शुरू है। इसलिए शब्द से तो जो आप कहते हैं, ठीक ही कहते हैं। बुद्ध और बुद्धि में एक शब्द प्रयुक्त हुए हैं लेकिन बड़े अलग भाव से प्रयुक्त हुए हैं। बुद्ध को बुद्धिमान आदमी नहीं कह सकते हैं, बुद्ध को प्रबुद्ध ही कह सकते हैं, ऐसा आदमी जो जाग गया। अब बुद्धि का जैसे सवाल ही नहीं रह गया है। तो वह जो मैं कह रहा था कि जब हम कहते हैं इंटलेकच्युअल कम्युनिकेशन, तब और बड़ा मुश्किल हो जाता है मामला। मेरे ख्याल से बौद्धिक संवाद जैसी चीज ही असंभव है। इसलिए असंभव है कि बुद्धि का जो काम है वह संवाद नहीं है। बुद्धि का काम विवाद है। यानी बुद्धि का जो मौलिक काम है वह विवाद का है, संवाद का नहीं है। इसलिए जहां हम संवाद को होते हैं वहां

अक्सर हम हृदय की बातें करने लगते हैं, बुद्धि की बातें तत्काल छोड़ देते हैं। और उसका और कोई कारण नहीं, क्योंकि किसी को प्रेम करते हैं तो यह नहीं कहते कि मैं बौद्धिक रूप से प्रेम करता हूं। इसमें कोई मतलब ही नहीं होता। तो मैं कहता हूं उसमें बुद्धि का कोई लेना-देना नहीं, मैं तो हृदय से प्रेम करता हूं। हृदय जैसी चीज कहीं होती नहीं शरीर में। हम यह कह रहे हैं कि बुद्धि को लेना-देना नहीं है।

एक बहुत छोटी सी घटना घटी है। मजनूं को उसके गांव के राजा ने बुला लिया और उससे कहा कि तू बिल्कुल पागल हो गया है लैला के लिए। इतनी साधारण लड़की के लिए इतना दीवाना क्यों है? कुछ तो सोचो, कुछ तो समझो। मजनूं ने कहा कि अगर सोच समझ ही सकता तो जो आप कहते हैं वही मैं भी कहता। वही तो तकलीफ हो गयी कि सोच-समझ नहीं पा रहा हूं। राजा

शरीर की स्वीकृति एक मंदिर की भांति है, एक मार्ग की भांति है। जब तक यह सूत्र मन में न हो तब तक या तो शरीर के हम भोगी होते हैं या शरीर के हम त्यागी होते हैं। और दोनों ही स्थितियों में शरीर के प्रति हमारी भावदशा सम्यक्, ठीक और संतुलित नहीं होती

ने कहा कि मैं और अच्छी लड़कियां बुला देता हूं। मेरे महल में लड़कियां हैं, तू उनको देख, एक से एक सुंदर लड़कियां हैं। उसने कहा, मैं सबको देखूंगा लेकिन लैला मुझे दिखायी नहीं पड़ेगी; क्योंकि जिससे उन लड़कियों को देखूगा उससे मैंने लैला को नहीं देखा और जिससे मैंने लैला को देखा उससे मैं अब किसी लड़की को नहीं देख सकता। उपाय ही नहीं कोई। राजा ने कहा, तू मूढ़ है बिल्कुल। उसने कहा, ऐसा ही समझें। अगर मूढ़ न होता तो जो आप कहते हैं वही मैं भी कहता। इसमें कोई फर्क नहीं है। आप जो कहते बिल्कुल ठीक कहते हैं। जहां तक बुद्धि की बात है, आप ठीक कहते हैं, मैं ही गलत हूं, लेकिन बुद्धि से मैंने प्रेम किया नहीं। और मैं पूछता हूं, बुद्धि से कब प्रेम किया गया है? वह जवाब तो नहीं दे सका राजा, अब हम नहीं दे सकते जवाब कि बुद्धि से कब प्रेम किया गया! असल में अगर हम ठीक से देखें तो हमारी बुद्धि का सारा विकास जीवन के संघर्ष

से पैदा हुआ है यत्र की तरह। हमने जीवन के संघर्ष में उसका उपयोग किया है। वह जो शारदा बिल की लड़ाई हो रही है उसमें बुद्धि ने हमें काम दिया। शायद इसलिए आदमी बच गया और जानवर हार गये। जहां लड़ाई का संबंध है वहां बुद्धि बड़ी उपयोगी है और जहां प्रेम का संबंध है वहां एकदम बेकार है। इसलिए परमात्मा से बुद्धि का नाता जोड़ना, सत्य से बुद्धि का नाता जोड़ना जरा कठिन है। हां, लड़ाई करनी हो, बम बनाना हो तो बुद्धि का काम हो जाता है। तो संवाद जो है वह एक तरह की लड़ाई नहीं है बल्कि लड़ाई से हट जाना है। और जब हम कहते हैं कि बौद्धिक संवाद है तब कण्ट्राडेक्ट्री हैं वे दोनों शब्द। संवाद और बौद्धिक का कोई संबंध नहीं है। लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि हम बुद्धि को खो दें तब संवाद होगा। यह मैं नहीं कह रहा हूं कि हम अबुद्धिवान हो जायें, कि हम अंधे होकर बैठ जायं, तो संवाद होगा।

लेकिन तकलीफ यह है कि वह भी कहेगा जो न कहा जा सकता हो। उसे आप ही कह जायं, लेकिन यह भी कहा होगा। अगर मैं यह कहूं कि परमात्मा को नहीं कहा जा सकता तो मैंने काफी कह दिया, जो कहा जा सकता था, वह कह ही दिया। हमारी कठिनाई यह है कि हमारे पास सिवाय भाषा के कोई उपाय नहीं है। यानी मामला ऐसा है कि मेरे हाथ में तलवार है और उसी से मुझे आपका आलिंगन करना है। यह बड़ी मुसीबत की बात है। आलिंगन करना है और है हाथ में तलवार, और कोई हाथ नहीं है मेरे पास और प्रेम करना है आपसे और गले मिलना है आपसे। तलवार ही मेरे पास है। यह तलवार की वजह से गला कटने का डर है और इस तलवार के सिवाय मेरे पास कोई उपाय नहीं है। आदमी की सबसे बड़ी तकलीफ यह है कि उसके पास कहने को शब्द है, बताने को तर्क है, उपयोग करने के लिए बुद्धि है और ये तीनों के तीनों बिल्कुल बेमानी हैं किसी अर्थ में। कुछ है जहां यह सब बेमानी है। और सारी जिन्दगी की तकलीफ यह है और उसकी तकलीफ नहीं समझी जा सकी है ठीक से, क्योंकि यह तो एकाध ही दो वाक्य में कहा उसने। यह तो कभी वह कहता है कि जो न कहा जा सके, उस संबंध में चुप रहना उचित है और फिर बाकी में तो वह सब भाषा का ही खण्डन कर रहा है कि नहीं कहा जा सकता। और उसकी बड़ी किताबों में एकाध दो वाक्य ऐसे खोजते हैं कि उनकी कोई फिक्र ही नहीं है। लेकिन वही महत्वपूर्ण है, बाकी सब बेमानी है। जहां वह यह कह रहा है कि कुछ है जो नहीं कहा जा सकता, लेकिन फिर भी कहने की इच्छा तो है। इशारा करने की भी इच्छा है और उसे शब्द से ही करना पड़ेगा। इसका रास्ता क्या निकले ? रास्ता

एक ही है कि हम शब्द का उपयोग करें और शब्द की निरर्थकता को जानते हुए उपयोग कर रहे हैं।

असल में अगर ठीक से हम देखें तो सारी कलाएं जैसे जैसे सत्य को बताने की दिशा में आगे बढ़ेंगी वैसे वैसे सत्य को बताने में तो समर्थ न होंगी, जो कुछ बता पा रही थीं उसको भी बताने में असमर्थ हो जायेंगी। वैसा हुआ है, हो रहा है। नयी मूर्ति है या नयी पेंटिंग है या नयी कविता या नया संगीत है। चेष्टा है इस बात की, वह जो फार्म बाधा डालता है, वह जो आकार और वह आकृति और वह जो मीडियम बाधा डालता है उससे हम मुक्त हो करके इतना ट्रांसपरेंट हो सकें कि वह बाधा न डाले बल्कि मार्ग बन जाय। लेकिन परिणाम क्या होता है? परिणाम यह होता है कि वह बाधा डालता था, अगर उससे हम मुक्त होने की कोशिश करते हैं तो हम मुक्त तो हो जाते हैं, लेकिन जब वह ट्रांसपरेंसी ही रह आती है, उससे कुछ आगे आरपार कुछ दिखायी नहीं पड़ता क्योंकि वह जो दिखायी पड़ता था वह आकार ही था। मैं इस तरह के शब्द का उपयोग कर सकता हूं जो बाधा न डाले, मगर वह शब्द सब अर्थहीन होंगे, ओम् जैसे शब्द होंगे वे सब, या कोका-कोला जैसे शब्द होंगे। इसका कोई मतलब नहीं है। हमने बहुत पहले इसका प्रयोग किया था इसीलिए कि यह अर्थहीन है। इसका उपयोग करो क्योंकि जितने अर्थहीन शब्द हैं सब उपयोग करके झंझट में डाल देते हैं और फिर उनके झंझट नहीं सुलझते। अब यह ओम् है, इसका उच्चारण कर दो, इसका कोई अर्थ नहीं है। इससे कुछ इंगित नहीं होता और इससे हम यह इंगित कर रहे हैं कि कुछ है जो शब्दों के बाहर है उसके लिए हमने यह शब्द चुना। लेकिन उससे भी क्या फर्क पड़ता है। कितने ही ओम् कहते रहो उससे भी कुछ फर्क नहीं पड़ता, उसका भी इंगित कहीं नहीं हो पाता।

मैं तो यहां यह कह रहा हूं कि नयी कलाएं इस तरह के उपयोग कर रही हैं जो एब्सर्ड हैं। इस तरह की मूर्तियां बना रही हैं जिसको आप किसी की मूर्ति नहीं कह सकते। अगर आदमी की मूर्ति बनानी है तो ऐसी ही बनानी पड़ेगी कि उसमें किसी का चेहरा न आये क्योंकि किसी का भी आ जायेगा तो वह किसी का हो जायगा। आदमी का नहीं रह जायगा। अब आदमी की अगर मूर्ति बनानी है तो उसमें मेरा चेहरा नहीं होना चाहिए, आपका चेहरा नहीं होना चाहिए, उसमें किसी का चेहरा नहीं होना चाहिए। उसमें कोई पार्टीकुलर चेहरा हुआ कि वह किसी आदमी का हो जायगा, आदमीयत का न रह जायगा। तो हम एक ऐसी मूर्ति बनायें जो किसी का चेहरा न हो। बन जायेगी ऐसी मूर्ति, लेकिन हम सोचते थे वह आदमियत

की बन जायगी लेकिन वह एक आदमी की भी न रह जायगी। जो मैं कह रहा हूं वह बस कह रहा हूं कि आदमियत की तो बनेगी नहीं, वह जो एक आदमी की बन सकती थी वह भी नहीं बनेगी, अब...अब वहां से भी विदा हो जायगी, वह फेसलेस हो जायेगी। आदमियत की बनाने में सिर्फ चेहरा खो जायगा और ऐसे ही हुआ है। इसलिए नयी कला के सारे प्रयोग फेसलेसनेस की तरफ हैं। सब चेहरे खो गये हैं वहां, और तब हमारी समझ के बाहर हो गया। और जो लोग कहते हैं कि हमारी समझ में आ रहा है वे या तो फैशन की वजह से कहते हैं या इस वजह से कहते हैं कि वरना वे बुद्धिहीन मालूम पड़ेंगे। बाकी नयी कला के सारे आयाम, सारे डाइमेंशंस ऐसे हैं कि वे आपको समझ में नहीं आ रहे हैं, न आनें चाहिए। कोशिश यह है कि समझ में आ गये तो अर्थ पकड़ में आ गया आपके, और अर्थ अगर पकड़ में आ गया आपके, तो आकार पकड़ में आ गया, फार्म हो गया, बात खत्म हो गयी। नहीं, जो समझ में नहीं आ रहा है, यही तो सारी चेष्टा है कि समझ में न आ जाय, लेकिन समझ में आने वाले शब्द से भी नहीं बता पाते थे, न समझ में आने वाले शब्द से क्या बता पायेंगे? यानी मैं यह कह रहा हूं कि जब समझ में आने वाला शब्द ही नहीं बता पाता, तो समझ में न आने वाला शब्द भी नहीं बता पायेगा। इसका मेरा मतलब क्या है? मेरा मतलब यह है कि यदि हमें बुद्धि की पूरी की पूरी असमर्थता का बोध हो जाय, उसमें जरा भी आशा नहीं रह जाय। होपिंग अगेंस्ट होप चल रही है, बहुत दिनों से वह चलती जाती है। कुछ लोग छिटक जाते हैं रास्ते के किनारे और वह कह देते हैं होपलेस हो गया मामला। उनकी बात अलग है, लेकिन आमतौर से हम आशा बांधे चले जाते हैं कि कोई रास्ता खोज लेंगें। अगर कालिदास नहीं खोज पाये, तो इजरा खोज लेंगे। अगर हमारे मूर्तिकार पुराने नहीं खोज पाये, तो पिकासो खोज लेगा। हम कोशिश में लगे हैं कि कोई न कोई रास्ता खोज लेंगे कि जो न कहे जाने जैसा वह है वह हम कह देंगे। मैं यह कह रहा हूं कि जिस दिन किसी व्यक्ति को यह समझ में आ जाता है कि यह मामला ऐज सच एब्सर्ड है, यानी यह सवाल नहीं है कि हम और किसी तरकीब से कह देंगे, सवाल यह है कि कहा ही नहीं जा सकता। यह सवाल नहीं है कि हम कोई और अच्छे शब्द खोज लेंगे, अच्छी आकृति, अच्छी कविता, अच्छी पेंटिंग। नहीं, यह सवाल नहीं है। जो है वह कहा जाने योग्य भी नहीं है। ऐसा नहीं है कि आज तक नहीं कहा गया, आगे कहा जा सकेगा। नहीं, वह कहा ही नहीं जा सकता। वह जो रियलिटी, जिसको आप कह रहे हैं, वह कही नहीं जा सकती। तब इसका मतलब यह है कि सिर्फ वह

जानी जा सकती है। और तब जानने और कहने के फर्क और फासले को समझ लेना उपयोगी होगा। वह जो नहीं कहा जा सकता वह भी जाना जा सकता है। हमारी क्या तकलीफ है कि हम यह कोशिश में लगे हैं कि जो जाना जा सकता है वह कहा भी जाना चाहिए। हमारी जो सारी तकलीफ है वह इसी वजह से है। जैसे बुद्ध कहता है, मैंने जाना निर्वाण। तो हम यह पूछते हैं कि कहो, क्या है निर्वाण? एक आदमी कहता है, मैंने ईश्वर को जाना। तो हम यह पूछते हैं कि बोलो, फिर क्या है ईश्वर? अगर वह नहीं बोल पाता तो हम हंसते हैं, हम कहते हैं, फिर जाना ही नहीं होगा। क्योंकि अगर जाना हो तो बोलो और अगर नहीं बोल सकते हो तो स्वीकार कर लो कि नहीं जाना, क्योंकि जो जाना गया है वह बोला क्यों नहीं जा सकता है?

मैं यह कह रहा हूं, यह बात जरूर सच है। एक मानवीय जरूरत है, एक बुनियादी जरूरत है कि जो हमने जाना है वह हम कहना चाहते हैं। क्योंकि जो हमने जाना है उसमें हम दूसरे को साझीदार बनाना चाहते हैं, भागीदार बनाना चाहते हैं। अगर मैं घर के पीछे गया और वहां एक फूल खिला देखा है जिससे

हम तो बाहर के मंदिरों में ही भटके रह जाते हैं और भीतर के मंदिरों का कोई पता भी नहीं चलता। हम तो पत्थर के शिखरों पर ही यात्रा करते हुए जीवन गवां देते हैं। चेतना के शिखरों का कोई अनुभव नहीं हो पाता

मैं नाचने लगा और आनंदित हो गया, तो मैं लौटकर मित्रों से कह देना चाहता हूं कि पीछे एक फूल खिला है वह बहुत आनंदित है यानी आनंद का एक हिस्सा बांटना भी है। दुख का एक हिस्सा न बांटना भी है। अगर मैं दुखी हूं तो दरवाजा बन्द करके कमरे के एक कोने में बैठ जाना चाहता हूं। मैं चाहता हूं, कोई न आये। दुख सिकोड़ देता है। और अगर मैं आनंदित हुआ हूं तो मैं बांट देना चाहता हूं, फैल जाना चाहता हूं और दस लोगों को खबर कर देना चाहता हूं। बिल्कुल स्वाभाविक है कि जो आदमी जाने, वह उसे कहने जाय, वह उसकी एक बेसिक जरूरत है। लेकिन हमारी सब जरूरतें जरूरी नहीं हैं कि पूरी हों। हमारी बुनियादी जरूरतें भी पूरी हों यह भी जरूरी नहीं है। हम जानते हैं और हम कहना भी चाहते हैं और कहने की कोशिश में हम सिम्बल्स भी खोजते हैं। क्योंकि बिना उसके तो

कोई उपाय नहीं कहने का। हम सिम्बल्स खोजते हैं। प्रतीक जो है वह हमारी चेष्टा है उसको बताने की जो हमने जाना, लेकिन हमारी चेष्टा सफल नहीं हो पाती। कला असफल है, काव्य असफल है, मूर्ति असफल है, सब असफल है और जितना बड़ा मूर्तिकार होगा उतनी बड़ी असफलता अनुभव करेगा और जितना बड़ा कवि होगा उतनी असफलता अनुभव करेगा और जितना बड़ा संत होगा उतनी असफलता अनुभव करेगा। छोटा होगा तो उतनी असफलता अनुभव नहीं करेगा। अगर उधार अनुभव को दोहराना है तो बराबर शब्द कह सकते हैं लेकिन आपका ही अगर अनुभव हुआ है, तो आप पहली दफा पायेंगे कि कोई शब्द ही नहीं है, क्योंकि वह अनुभव आपका है और आप पहली दफा हुए हैं जमीन पर और कोई शब्द नहीं है क्योंकि आप जैसा अनुभव किसी को कभी नहीं हुआ है। हां, अगर कोई उधार अनुभव हुआ है कि अगर स्त्री के चेहरे में आपको भी चांद दिखा है तो कालिदास से लेकर सब उसको कहते रहे हैं चांद देखने को। आप भी एक कविता बना सकते हैं जिसमें स्त्री के चेहरे में चांद दिख जाय, लेकिन वह अनुभव बहुत अधूरा, बासा और सेकेण्ड हैण्ड है। हजार हाथ से गुजरा हुआ अनुभव है। आप कह पाते हैं और दूसरा भी समझ पाता है क्योंकि वह सबका अनुभव है। लेकिन जितना अनुभव निजी होता जायगा और जितना गहरा होगा उतना निजी होगा। और परमात्मा का अनुभव चूंकि अत्यंतिक चरम अनुभव है, उससे गहरा कोई अनुभव नहीं है। वह नितांत निजी है, यानी वह पहली दफा आपको ही हो रहा है आपके जैसा, वैसा पहले कभी किसी को नहीं हुआ। उस गहराई में आप कोई शब्द नहीं पाते हैं और कोई सिम्बल नहीं पाते हैं, बनाने की कोशिश करते हैं। जब आप बनाने की कोशिश करते हैं तभी उपद्रव शुरू होता है क्योंकि आप कुछ कहते हैं, समझा कुछ जाता है, बताते कुछ हैं और सुना कुछ जाता है और तब एक उपद्रव शुरू हो जाता है जो हजारों साल तक चलता है। जैसे कृष्ण की गीता है। अभी टीका चल रही है। उसका मतलब यह है कि जो उन्होंने कहा था वह अभीतक नहीं समझा गया। टीका की अब कोई जरूरत नहीं है। एक हजार टीकाएं लिखी गयी हैं और अभी टीकाएं लिखे चले जा रहे हैं लोग, यानी मामला यह कि वह आदमी जो बेचारा बोला था वह बोला अभीतक उपद्रव में पड़ा है कि वह क्या बोला था? इसपर टीका चल रही है कि वह यह बोला था, वह यह बोला था। गांधी कहते वे यह बोले, तिलक कहते वह यह बोले, शंकर यह कहते हैं, विनोबा यह कहते हैं। वह हजारों लोग बता रहे हैं कि वह क्या बोला था। और मजा यह है कि जब वही बोला और हम नहीं समझ पाये, तो

विनोबा या गांधी या तिलक के कहने से हम क्या समझेंगे? और उनपर टीकायें चलेंगी कि तिलक बोले, उसका क्या मतलब है? और इसका कोई अंत नहीं है। फिर भी शब्द से ज्यादा गहराई में दूसरे सिम्बल पहुंचते हैं। जैसे हो सकता है कि मैं शब्द में आपसे एक बात न कह पाऊं लेकिन मैं उठूं और आपको गले से लगा लूं। और कोई बात कह नहीं सकते क्योंकि शरीर जो है, स्पर्श जो है वह शब्द से बहुत पुराना है। शब्द बहुत बाद की चीज है और मेरे शब्द और आपके शब्द अलग हो सकते हैं, लेकिन मेरे शरीर का स्पर्श और आपके शरीर का स्पर्श अलग नहीं हो सकता है। यह हो सकता है कि जो मैं शब्द में न कह सकूं और उठाऊं एक तंबूरा और नाचने लगूं और यह कहना चाहूं कि मैं बहुत खुश हूं और न कह पाऊं, क्योंकि आप पूछें कि खुशी यानी क्या? खुशी कैसी है आपको? तो शायद मैं नाचूं और मेरे नाचने से आपको खुशी की एक झलक मिल जाय; लेकिन फिर भी ये सिम्बल्स ही हैं, फिर भी वह नहीं कह पाता हूं जो मैं कहना चाह रहा हूं। मैं आपसे कह नहीं पाऊंगा बस आपकी तरफ देखूंगा और आपकी ताली सुनूंगा तो मैं समझूंगा कि आप कुछ समझे। मेरे बाह्य आयाम का थोड़ा सा फल हुआ। लेकिन जो मैं कहना चाहता था वह नहीं पहुंचा, मैं शायद उदास चला जाऊंगा। वह नहीं पहुंचाया जा सका वह जो कहना था। नाद से भी, कला से भी, चित्र से भी कुछ कहने की कोशिश की गयी है, सब तरफ कोशिश की गयी है। मैं यह कह रहा हूं कि सिम्बल से कहने की तो कोशिश की गयी है, लेकिन सिम्बल असफल हो गये हैं यह हमें पूरा अबतक बोध नहीं हो पाया। और सब सिम्बल असफल हो गये हैं और मैं यह नहीं कह रहा हूं कि सिर्फ असफल ये सिम्बल हो गये हैं। मैं यह कहता हूं, सिम्बल असफल होने को बाध्य हैं। उसका कारण यह है कि सिम्बल रियलिटी तो नहीं है, कुछ और हैं। मैंने एक सूरज को उगते देखा सुबह और एक आनन्द से भर गया। फिर मैंने एक चित्र बनाया, कुछ रेखाएं खींचीं और एक सूरज बनाया। एक पेंटिग बनाकर लाकर आपको दिखायी और आपसे कहा कि बड़ा ही आनन्द आया। आपने देखा, आपने कहा ठीक है और रख दी, क्योंकि आखिर रेखाएं रेखाएं हैं, सूरज नहीं हैं और रंग रंग हैं; सूरज के रंग नहीं हैं। और मैंने कितनी ही कोशिश की, तब भी एक छोटे से कागज पर मैं जो खींच सका हूं वह हजारों मील दूर की ध्वनि है। यह वह बात नहीं है जो वहां थी। कितना ही सफल हो जाय सिम्बल, वह रियलिटी तो नहीं बनता। वह सूरज नहीं बन जायगा। यानी सिम्बल इसलिए असफल

होने को बाध्य है कि उसकी पैंटिंग कभी भी सूरज नहीं बन पायेगी, वह सूरज नहीं बन सकती। हां लेकिन एक खतरा है सिम्बल के साथ और वह खतरा भी काफी काम का है। वह खतरा यह है कि हो सकता है आप कभी घर के बाहर ही न निकलें क्योंकि आप समझें कि पैंटिंग घर में लटकी है तो सूरज घर में लटका है, बाहर जाने की जरूरत क्या है, घर में तो सूरज लटका हुआ है और आप उसी पैंटिंग से उलझे रह जायं और सूरज को कभी न जान पायें। सिम्बल ने अबतक तो कम्युनिकेट किया नहीं लेकिन हिड्रेंस डाल ली। गीता पकड़े बैठा है। वह सूरज घर का किताब वाला सूरज है। वह घर में कुरान पकड़े बैठा है। कोई महावीर को, कोई बुद्ध को पकड़े बैठा है। यह सब लोग थे, क्योंकि महावीर हमारे लिए क्या हैं, सिर्फ सिम्बल ! जो वह बोले, वही रह गया हमारे पास। कृष्ण हमारे लिए क्या हैं, वह जो बोले। अगर कृष्ण का बोला हुआ खो जाए तो कृष्ण खो जायेंगे। न मालूम कितने कृष्ण खो गये जो कि नहीं बोले, या बोले और फिर नहीं पकड़ा जा सका तो खो गये। सिम्बल पकड़ जाता है यानी जिन्होंने कोशिश की थी उन्होंने तो चाहा था कि इस प्रतीक के द्वारा आपको कुछ कह देंगे। और कठिनाई ऐसी हो गयी की अगर आज वह मुर्दा हैं, कहीं वापस लौट सकें तो पहला काम यह करें कि आपसे गीता कैसे छुड़ा लें। अगर कृष्ण लौट सकें तो पहला काम यह करेंगे कि गीता को इकट्ठा करके आग कैसे लगा दें। क्योंकि सोचा तो था कुछ कह देंगे और कुछ कह तो नहीं पाये। और ये लोग जो जा सकते थे खुद भी खोजने, तो यह भी नहीं गये। क्योंकि उन्होंने समझा कि हमारे पास तो उपलब्ध हो गयी है किताब।

कला असफल हो गयी है, दर्शन असफल हो गया है, शास्त्र असफल हो गये हैं, गुरु असफल हो गये हैं और असफलता का कारण यह है कि सत्य को प्रतीक कभी बनाया ही नहीं जा सकता। सत्य सत्य है और आपको जानना है तो आपको आमने-सामने खड़ा होना पड़ेगा। बीच में प्रतीक लाने का कोई उपाय नहीं है।

लेकिन कम्युनिकेशन में प्रतीक आ जाता है इसलिए कम्युनिकेशन और रियलाइजेशन अलग अलग बातें हैं। कम्युनिकेशन एक काम भर अगर कर दे जो मेरी समझ है। आप मुझसे पूछ सकते हैं कि फिर मैं क्यों मेहनत कर रहा हूं, जब मैं मानता हूं कि बोल के कुछ कहा नहीं जा सकता, तो फिर मैं क्यों बोल रहा हूं? तो मेरा कुल कहना इतना है कि बोलने से केवल इतनी हालत पैदा की जा सकती है कि आपको एक दिन लगे कि एब्सर्ड है, बेकार है।

कुछ नहीं हुआ, न बोलने से कुछ हुआ, न सुनने से कुछ हुआ। इतने निगेटिव अर्थ में ही कम्युनिकेशन का उपयोग है कि हम सिर खपाते रहें, खपाते रहें, फिर आपका भी सिर पक जायेगा और मैं कहूं बकवास बन्द और आप कहें कि चुप हो जाइए, अब मुझे कुछ नहीं सुनना है। एक घड़ी ऐसी आ जाय और घबरा जायं और आप कहें कि नहीं जाना जा सकता है, तो शायद आप घर के बाहर निकल जायं, पेंटिंग को यहीं छोड़ जायं। वहां सूरज है। हमारे संवाद करने न करने, का कोई सवाल ही नहीं है।

रवीन्द्रनाथ के जीवन में एक बहुत अच्छा उल्लेख है। एक रात सौंदर्य पर एक किताब पढ़ रहे हैं। रात दो बज गये हैं, पढ़ते पढ़ते थक गये हैं, फिर क्रोध से किताब पटक दी है, दिया बुझा दिया है और फिर खड़े होकर नाचने लगे हैं, क्योंकि जबतक वे किताब पढ़ रहे थे तबतक तो उन्हें पता ही नहीं था कि बाहर पूर्णिमा की रात है। और जैसे ही किताब पटकी है और दिया बुझाया है, चांद की सब किरणें भीतर भर गयी हैं, बजरे के अंदर जहां नाव पर वे थे। और चांद बाहर था जबतक दिया भीतर जल रहा था। वह भीतर आ गये तो नाचने लग गये हैं और उन्होंने कहा, मैं भी कैसा पागल था, आधी रात गवां दी, किताब पढ़ता रहा जानने को कि सौंदर्य क्या है और सौंदर्य बाहर खड़ा ही था। वह पूरे वक्त दरवाजे पर ठोकर दे रहा था कि तुम दिये को बुझाओ, तुम किताब बन्द करो तो मैं आ जाऊं। अगर में रवीन्द्रनाथ को मिल सकता, तो उनसे कहता कि हो सकता था कि सांझ आप सो गये होते और चांद फिर भी बाहर खड़ा रहता। आधी रात तक किताब पढ़ने में कम से कम एक विपरीत हालत पैदा की कि सब बेकार है, इससे कुछ समझ में नहीं आता। किताब पटक सके आप, तो ही देख सके चांद। किताब तो नहीं बता सकी कि सौंदर्य क्या है, लेकिन किताब को पटकना एक स्थिति है मन की जिसके बिना हो सकता है सौंदर्य न जाना जा सकता।

यानी मैं यह कह रहा हूं कि दर्शन का एक ही उपयोग है कि वह इतना परेशान कर डाले कि एक दिन आप किताब पटक सकें। उस थकी-मांदी, सर्वहारा दिशा में जब कोई मार्ग नहीं, कोई दिशा नहीं, कोई आशा नहीं तब शायद आपकी आंख उसको देख ले, जो है।

वह तो है ही, उससे कोई सवाल नहीं। अगर मेरे कम्युनिकेट करने पर उसका होना निर्भर होता तो कोई खतरा था, यानी मेरे संवादित करने पर उसके होने में कोई फर्क नहीं पड़ता, वह है ही। खतरा तब है, जब कि हम ऐसा समझ

कर चलें कि संवाद हो जाय। संवाद एक अर्थ में असंभव है, बौद्धिक संवाद तो असंभव है यानी वह असंभावना का ही नाम है। फिर क्या और कोई संवाद हो सकता है? और कोई संवाद नहीं और क्या संवाद करियेगा। हम चुप बैठ सकते हैं। लेकिन जब हम चुप बैठेंगे तो मेरे और आपके बीच बात नहीं होगी। जब हम चुप बैठेंगे तो मेरी भी जो रियलिटी है उससे बात होगी और आपकी भी रियलिटी से बात होगी। अगर इसको मैं ऐसा कहूं कि शब्द जो हैं वह हमें एक दूसरे की तरफ अभिमुख कर देते हैं, मौन जो है वह हमें सत्याभिमुख कर देता है। जब हम बातचीत करते होते हैं तो आप मेरी तरफ देखते हैं और मैं आपकी तरफ देखता हूं कि दोनों आपस में उलझे हुए हैं। जब शब्द बीच से खो जाते हैं तो न मैं आपकी तरफ देखता हूं और न आप मेरी तरफ देखते हैं, तब मजबूरी जो है उसको हमें देखना पड़ता है। एक घड़ी आनी चाहिए जिन्दगी में जब सब व्यर्थ हो जाय। मगर यह आयेगी नहीं, जबतक शब्द के साथ श्रम न चले, व्यायाम न चले।

★

हमेशा भीड़ के भय के कारण ही हम असत्यों को स्वीकार किये बैठे रहते हैं। सत्य तो अपने पैर पर खड़ा हो सकता है, लेकिन असत्य को भीड़ का मत चाहिये। इसलिये दुनिया में जब असत्य को फैलाना हो, एक आदमी हिम्मत नहीं जुटा पाता, भीड़ चाहिये

सत्य तो इतना बड़ा है कि उसमें दुख भी होगा, आनंद भी होगा, अंधेरा भी होगा, प्रकाश भी होगा और उसमें परमात्मा भी होगा, शैतान भी होगा !

सच्चिदानंद' सत्य की परिभाषा नहीं !

संकलन : शिव

सत्य की कोई परिभाषा नहीं हो सकती। यह हमारी आकांक्षा की परिभाषा है, सत्य की नहीं। हमारी आकांक्षा है कि सत्य ऐसा हो : सच्चिदानंद हो--सत् भी हो, चित् भी हो, आनंद भी हो--यह हमारी आकांक्षा है। यह आदमी की आकांक्षा है कि सत् दुख न हो, नहीं तो मर गये। जहां संसार दुख है और सत्य भी दुख है, मोक्ष भी दुख है, तो फिर हम कहां जायेंगे ! तो मोक्ष ऐसा हो जहां दुख बिल्कुल न हो, मोक्ष ऐसा हो कि जहां अज्ञान बिल्कुल न हो, ज्ञान ही ज्ञान हो। मोक्ष ऐसा हो जहां अंधेरा बिल्कुल न हो, प्रकाश ही प्रकाश हो। यह सच्चिदानंद जो है यह सत्य की परिभाषा नहीं है, यह हमारी आकांक्षा है और हमारी आकांक्षाएं हमें बड़ी प्रीतिकर लगती हैं। इसलिए जिस शास्त्र में यह लिखा है उस शास्त्र को भी हम बड़ा प्रेम करेंगे और अगर विवेकानंद यह कहेंगे तो वह भी बड़े गुरु हो जायेंगे। उसका कुल कारण इतना है कि हमारी आकांक्षाओं को तृप्ति मिल रही है। अगर कोई गुरु आये और कहे कि सत्य बड़ा दुखद है और एकदम अंधकारपूर्ण है और अज्ञान ही अज्ञान है, तो आप कहेंगे कि आपकी क्या जरूरत है ? आप यहां कैसे ? हम तो काफी अज्ञान झेल रहे हैं, काफी दुख झेल रहे हैं--और मोक्ष में भी यही होगा, फिर तो कोई उपाय नहीं। हमारी आकांक्षाएं हैं ऐसी कि आत्मा अमर है, कभी न मरे,

हमें सुख ही सुख हो, दुख न हो। लेकिन सत्य की यह परिभाषा नहीं है। मेरी तो अपनी समझ यह है कि जहां आनंद होगा वहां दुख के भी बड़े नये आयाम होंगे, होने ही चाहिए। अभी जिस दुख को हम जानते हैं वह बहुत छिछला है क्योंकि जिस सुख को जानते हैं वह भी बड़ा छिछला है। असल में इनकी मात्रा बराबर होती है। जिस दिन आनंद इतना गहरा होगा कि रोयां रोयां कंप जायेगा, इस भूल में मत पड़ना कि उस दिन दुख भी उतना गहरा नहीं होगा, उस दिन दुख भी उतना ही गहरा होगा कि रोयां रोयां कंप जायगा। हमारी संवेदनशीलता बराबर बढ़ती है। एक आदमी को अगर सौंदर्य का बहुत बोध हो तो उसे कुरूपता का भी उतना ही बोध हो जाता है। यह असंभव है कि एक आदमी को सौंदर्य का ही सिर्फ बोध हो जाय और कुरूपता का बोध न हो। एक साथ ही बढ़ेगा। अगर एक आदमी को स्वच्छ रहने का बड़ा आनंद है तो उसे अस्वच्छ होने की पीड़ा बढ़ जायेगी उसी मात्रा में। लेकिन हमारी आकांक्षा चाहती है कि ऐसी दुनिया हो जहां अंधेरा न हो, रोशनी ही रोशनी हो। हालांकि भगवान हमारी आकांक्षाएं पूरी नहीं करता, नहीं तो हम बड़ी मुश्किल में पड़ जायं। अगर रोशनी ही रोशनी हो तो रोशनी बहुत घबराने वाली हो जाय। रोशनी में भी सुबह जो हमें सुख मालूम पड़ता है, उस सुख को पाने का अर्जन भी रात के अंधेरे में ही हमने किया है। और सुबह जब किसी के प्रेम में आनंद आता है, तो वह किसी की घृणा में झेले गये दुख का भी उसमें हाथ है। यह अकेला नहीं है। सत्य तो इतना बड़ा होगा कि उसमें दुख भी होगा, आनंद भी होगा, अंधेरा भी होगा और प्रकाश भी होगा और उसमें परमात्मा भी होगा और शैतान भी होगा। सत्य तो चूंकि पूरे को घेरेगा, उसमें अमरता भी होगी तो उसमें मृत्यु भी होगी, उसमें पूर्ण मृत्यु भी होगी।

जो सत्य है वह तो सब घेर लेगा, जो है। और हम जो हैं, पूरे को नहीं देखना चाहते हैं क्योंकि हम खुद ही घबराते हैं कि पूरा दिखायी न पड़े, क्योंकि पूरा दिखायी पड़ने का बड़ा एक और ही मतलब होगा।

अभी मैं बात कर रहा था। कोई आया तो मैंने उससे कहा कि आ जाओ। किसी ने पूछा कि आप दोनों बातें एक साथ कह रहे हैं—आओ भी और जाओ भी। तो मैंने उसको कहा कि जिन्दगी में तो दोनों साथ ही हैं, जहां आना है वहां जाना जुड़ा हुआ है। आने का मतलब ही है जाने की शुरूआत और जवान होने का मतलब है बूढ़ा होना और जन्म लेने का मतलब है मरने की

तैयारी। पूरे सत्य को अगर हम देखने जायेंगे तो उसमें सब है अपनी पूर्णता में, लेकिन हमारी न तो उतनी हिम्मत है कि हम उतनी पूर्णता को देख सकें, हम तो काटकर च्वाइस करेंगे। तो वह जो परिभाषाएं हैं वे सब हमारे चुनाव हैं, हमारी आकांक्षाएं हैं। अब ऋषि कहते हैं कि हमें अंधकार से प्रकाश की ओर ले चलो। अब इसमें ऋषि भगवान के खिलाफ बड़ी शिकायत कर रहा है। वह यह कह रहा है कि अंधकार क्यों? प्रकाश ही चाहिए। यानी वह कह रहा है कि तुमने बड़ी भूल की जो अंधकार दिया। सिर्फ प्रकाश चाहिए, मुझे तो प्रकाश की ओर ले चलो। सत्य तो अंधकार भी है और प्रकाश भी। वह जीवन भी है और मृत्यु भी। ये दोनों जो हमें विरोधी लगते हैं जब हमें एक ही चीज के छोर दिखायी पड़ेंगे तभी हम जान पायेंगे कि क्या है? और जब हम ऐसे विरोध को एक साथ जान पायेंगे तो हमारे चित्त के सब खण्ड विदा हो जायेंगे, फिर हमारी कोई आकांक्षा न रह जायेगी, क्योंकि आकांक्षा का कोई मतलब नहीं। फिर अंधेरा होगा तो हम जानेंगे कि यह प्रकाश के आने की तैयारी है, और प्रकाश होगा तो हम जानेंगे कि यह अंधेरे की तैयारी है, और दुख होगा तो हम जानेंगे कि आस-पास कहीं सुख है, और सुख होगा तो हम जानेंगे कि तैयार रहो, दुख आता है। वह हमारी तैयारी होगी और हम जानेंगे कि यह जीवन है। लेकिन अभिलाषाएं सुख देती हैं बहुत, और धर्म के नाम पर बहुत कुछ तो हमारी मनोवांछाएं हैं, इच्छाएं हैं जो चलती हैं और दुखी हैं, पीड़ित हैं।

बर्टेन्ड रसल ने एक बहुत बढ़िया बात कही है। उसने कहा है कि अगर दुनिया सच में सुखी हो जाय तो धर्मगुरुओं का क्या होगा? क्योंकि दुखी लोग सुख की तलाश में निकलते हैं। अगर सच में दुनिया सुखी हो जाय तो कौन सुख? कभी आपने भी ख्याल किया है कि जब आप किसी क्षण में आनंद में होते हैं तो न तो क्यों उठता है कि दुनिया क्यों है? मैं क्यों पैदा हुआ? यह भगवान ने क्यों बनाया है इसको? नर्क है कि स्वर्ग है, कि नहीं? कुछ क्यों नहीं उठता? जब आप आनंद में होते हैं तो सब स्वीकार होता है—जो है वह है। उसके होने में जरा भी कोई कहीं जरा सा प्रश्न भी नहीं लगाता। लेकिन जब आप दुख में होते हैं तब सब प्रश्न उठने शुरू हो जाते हैं और जब प्रश्न उठने शुरू हो जाते हैं, तो उत्तर चाहिए। तो जो उत्तर हमारे मन के अनुकूल होते हैं उनको हम धर्म बना लेते हैं, सच्चे उत्तर का धर्म नहीं बन पाता, मनोनुकूल उत्तर का धर्म बन जाता है। और सच्चा उत्तर जरूरी नहीं कि मनोनुकूल हो, क्योंकि

आवश्यक नहीं है कि आपके मन के अनुकूल सत्य चलता हो। हां, सत्य के अनुकूल आप चाहें तो चल सकते हैं, लेकिन सत्य को कोई बंधन आपके अनुकूल चलने का नहीं है; लेकिन मनोनुकूल उत्तर धर्म बन जाता है। जो उत्तर हमारे मन को भा जाता है और लगता है कि ठीक है, हां, हमारी तृप्ति कर दी। हमारा प्रश्न हमसे हल होता है। मैं नहीं कहता कि इन बातों में कुछ रस है। और विवेकानंद की बात आपको अच्छी लगती है वह इसलिए नहीं कि सच है, वह इसलिए कि आपके मन के अनुकूल है। अनुकूल नहीं है तो अच्छी नहीं लगती है। लेकिन हमारी कल्पनाओं से कुछ हल नहीं होता है और हम कितने ही चाहें कि हम सुख सुख को ही वरण कर लें और दुख दुख को इन्कार कर दें। हम यह समझ ही नहीं पा रहे हैं कि सुख को वरण करने में दुख हुआ जा रहा है और ऐसे जैसे एक सिक्का है और मैं उसका एक पहलू फेंक देना चाहता हूं। अब मैं पागल हो जाऊंगा, क्योंकि मैंने एक ऐसा काम शुरू किया है जो पूरा हो नहीं सकता है। एक हिस्सा फेंक देना चाहता हूं एक सिक्के का और एक हिस्सा बचा लेना चाहता हूं। अब मैं पागल हो जाऊंगा क्योंकि मैंने एक ऐसा काम शुरू किया है जो पूरा हो नहीं सकता है। एक हिस्सा फेंक देना चाहता हूं एक सिक्के का और एक हिस्सा बचा लेना चाहता हूं। अब ज्यादा से ज्यादा इतना ही हो सकता है कि जिस हिस्से को मैं बचा लेना चाहता हूं उसे ऊपर कर लूं और जिसे फेंक देना चाहता हूं उसे नीचे कर लूं। बस इससे ज्यादा कोई सफलता नहीं मिल सकती। लेकिन कितनी देर ऊपर-नीचे करूंगा? जिसको मैंने नीचे किया है उससे थोड़ी देर में ऊब जाऊंगा, क्योंकि तबतक उसे देखता रहूंगा। और बड़े मजे की बात है कि दुख कभी उतना उबाने वाला नहीं होता है जितना सुख उबाने वाला हो जाता है। असल में दुखी आदमी कभी बोर ही नहीं होता, सिर्फ सुखी आदमी बोर होते हैं। बोरडम जो है वह सुखी आदमी का गुण-धर्म है, इसलिए आप हैरान होंगे कि जितना जो दुखी होता है उतनी आत्महत्या कम होती है, कम परेशान नजर आते हैं, कम चिन्ता घेरती है, क्योंकि दुखी आदमी को बोर होने की फुर्सत नहीं है। वह अपने काम में लगा हुआ है, बदलने में लगा हुआ है कि सिक्के को उल्टा कर ले। लेकिन जब सिक्का उल्टा हो जायगा तब क्या करियेगा? एक दफा दुख को नीचे दबा दिया और सुख को ऊपर कर लिया, फिर क्या करियेगा? और अब अगर सिक्के को उल्टाया तो नीचे दुख है। तो जैसे ही एक आदमी सुखी हुआ कि उसकी मुसीबत शुरू हो गयी। देवताओं को अगर दुनिया में कोई दुख होगा तो बोरडम

का होगा। मोक्ष में भी अगर कोई दुख होगा तो बोरडम का तो होगा और बोरडम इतनी हो गयी होगी कि मैं नहीं समझता कि मोक्ष में अब कोई एक भी बचा होगा, सब भाग गये होंगे। उनकी बोरडम की तो हम कल्पना भी नहीं कर सकते, क्योंकि जहां सुख बिल्कुल उपलब्ध हो वहां करियेगा क्या? वह तो दुख से लड़ने में रस है, सुख मिलता नहीं, उसके पाने की आकांक्षा में सारा मजा है और जब मिल जाता है, तो थोड़ी देर बाद हम पाते हैं कि अब क्या करें। तब आप हैरान होंगे कि सुखी आदमी अपने हाथ से दुख भी खोजने लगता है। तो यह ऐसी तरकीबें करता है जिनसे अब दुख आये।

एक फकीर हुआ नसरुद्दीन। उसकी कहानी कहता रहता हूं। वह एक गांव के बाहर बैठा हुआ है। सांझ का वक्त है, अंधेरी रात है और एक आदमी आकर घोड़े से उतरा है। उस आदमी ने नसरुद्दीन के सामने एक बड़ी थैली

दुनिया हमेशा वही है सिर्फ आदमी बदल जाते हैं और जब आदमी बदल जाता है, दुनिया बदल जाती है

रख दी और कहा कि इसमें करोड़ों के हीरे-जवाहरात हैं और मैं इसे किसी को भी देने को तैयार हूं, मुझे जरा सा सुख मिल जाय। मैं गांव गांव खोज रहा हूं, मुझे सुख नहीं मिल रहा है। मैं एकदम परेशान हो गया हूं, मैं मर जाऊं या क्या करूं? सब है मेरे पास, एक सुख नहीं है। तो किसी ने मुझसे कहा, एक फकीर नसरुद्दीन है उसके पास चले जाओ। तुम्हीं हो? मैं तुम्हारे पास आया हूं। फकीर खड़ा हो गया और उसने कहा कि मैं ही हूं। उसने कहा, तू सुख चाहता है? उस आदमी ने कहा, सुख चाहिए, सब खोने को तैयार हूं, एक क्षण के लिए भी सुख मिल जाय। उस फकीर ने इतनी बात पूछी और वह थैली लेकर फकीर भाग गया। वह आदमी चिल्लाया कि यह क्या कर रहे हो? मैं तो सोचता था कि तुम ब्रह्मज्ञानी हो। लेकिन जब वह नहीं रुका तो वह आदमी उसके पीछे भागा। गांव फकीर का तो जाना-माना था। वह गली-कूचे चक्कर देने लगा। गांव इकट्ठा हो गया है। वह चिल्ला रहा है कि मुझे लूट लिया, मैं मर गया, मेरी जिन्दगी खराब हो गयी। मेरी जिन्दगी भर की कमाई है उस थैली में और यह आदमी चोर निकला।

यह ब्रह्मवादी नहीं है, इसे पकड़ो और मुझे बचाओ। मैं मरा। सारे गांव में चक्कर लगाकर फकीर उस जगह वापस आ गया और उसने थैली पटक दी और झाड़ के पास खड़ा हो गया। वह अमीर आदमी आया, उसने थैली छाती से लगायी और कहा, हे भगवान, धन्यवाद। उस फकीर ने कहा, कुछ सुख मिला? यह भी एक रास्ता है सुख पाने का। अब तुम्हारे लिए यही रास्ता बचा है। तुम्हारे लिए दूसरा रास्ता नहीं है, क्योंकि और तुम क्या करोगे।

हम जो चाहते हैं, सुख ही सुख बच जाय, वह संभव नहीं है। अगर बच भी गया तो सुख भी दुख देने लगेगा। जब जिसको मैं कहता हूं, जो जीवन को उसकी सचाई में देखता है, आकांक्षाओं में नहीं – दो रास्ते हैं। एक तो मैं आकांक्षाओं से जीवन को देखने जाऊं। जब मैं कहता हूं, सुख ही सुख चाहिए तब मैं जीवन की फिक्र नहीं कर रहा हूं। मैं यह कह रहा हूं, मुझे चाहिए, लेकिन मैं यह नहीं पूछता कि जीवन में मेरी फिक्र है कुछ। मैं नहीं था और जीवन था और मैं रहूंगा, जीवन रहेगा और रत्ती भर कहीं कोई पत्ता नहीं हिलेगा, कोई लहर नहीं कंपेगी। कहीं कुछ भी नहीं होगा। मेरे होने न होने से जीवन को क्या फिक्र है। मैं इधर दो क्षण के लिए हूं तो कहता हूं, ऐसा चाहिये. वैसा चाहिए। जब मैं यह देखता हूं कि मैं नहीं था और सब था और मैं नहीं रहूंगा, तब भी सब होगा, तब तो उचित है कि मैं कहूं कि क्या होना चाहिए? पर जब मैं देखूंगा कि असल में क्या है तब मुझे पता चलेगा कि दुख और सुख एक ही सिक्के के दो पहलू हैं और जब दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं तो किसको बचाना और किसको छोड़ना? जब मैं राजी हूं, सुख आया तो सुख के लिए, दुख आये तो दुख के लिए और यह जो राजी होना है यह जो एक्सेप्टेबिल्टी है, यह एक ऐसे आनंद को उतार देती है जिसका हमें कुछ भी पता नहीं है। वह आनंद दुख विरोधी नहीं है, वह आनंद दुख में भी रहेगा, वह आनंद सुख का पर्यायवाची नहीं है, क्योंकि सुख चला जायगा तब भी वह रहेगा। उसको आनंद शब्द कहने से भी थोड़ी भूल हो जाती है इसलिए थोड़ी समझपूर्वक बुद्धि ने प्रयोग किया तो बुद्धि ने आनंद का उपयोग नहीं किया, शांति का उपयोग किया क्योंकि आनंद में कहीं न कहीं सुख का ख्याल है। हम कितना ही उसको बचाने की कोशिश करें, आनंद में कहीं न कहीं सुख का भाव है। एक शांत मन रह जाना है–सुख हो या दुख हो, और वह तभी रह सकता है जब दोनों एक से स्वीकार हो गये हैं क्योंकि दोनों हैं और स्वीकार करने की चेष्टा हमें नहीं करनी है। मतलब, अस्वीकार करने का कोई अर्थ ही नहीं है, यह हमें दिखायी

पड़ जाय तो बात खत्म हो गयी। लेकिन हम आकांक्षाएं आरोपित कर रहे हैं इसलिए हमने इस तरह के धर्म खड़े कर लिए हैं, गुरु भी खड़े कर लिए हैं, जो हमारी आकांक्षाओं की तृप्ति के रास्ते बता रहे हैं। वे हमसे कहते हैं कि हम परम आनंद में पहुंचा देंगे, हम पहुंचाने की कोशिश करते हैं। हम कभी पूछते भी नहीं कि होने की आकांक्षा ही दुखी आदमी का लक्षण है और दुखी आदमी कैसे परम आनंदित हो सकता – मंत्र पढ़ने से? तो इतना फर्क है दुखी और परम आनंदित आदमी में कि एक मंत्र पढ़ता है और दूसरा मंत्र नहीं पढ़ता है। इतनी सस्ती तरकीब काम कर सकती है कि परम आनंद मिल जाय, कि हम सोचते हैं कि परम आनंद मिल जायगा उपवास करने से, कि रात खाना न खाने से, सिगरेट न पीने से, कि चाय न पीने से परम आनंद मिल जायगा। अगर इतना ही फासला है तो दुखी और परम आनंद आदमी में कोई खास फर्क नहीं है, सिगरेट पान आदि का फर्क है, बहुत छोटा सा फर्क है। ऐसा कमजोर सा फर्क है कि कोई हिम्मत का आदमी जाना नहीं चाहेगा। वह सस्ता सा फर्क

जीने का एक ही अर्थ है – खतरे में जीना; जीने का कोई दूसरा अर्थ होता नहीं। मुर्दे बिलकुल सुरक्षित हैं क्यों कि वे अब चाहें तो मर भी नहीं सकते

मोक्ष में और पृथ्वी पर अगर है कि मोक्ष में लोग सिगरेट नहीं पीते, चाय नहीं पीते और सिनेमा नहीं देखते – इतना ही अगर फर्क है, तो कौन मोक्ष जाना चाहेगा? इसका कोई मतलब नहीं रह गया। फर्क कुछ ज्यादा रेडिकल होना चाहिए। यह कोई फर्क ही नहीं होगा। फर्क का मतलब है कि हम जहां हैं उसमें हमारी दो तरह की जिन्दगी हो सकती है। आकांक्षाओं को आरोपित करने वाली और यथार्थ को स्वीकार करने वाली। बस दो तरह की जिन्दगी होती है। आकांक्षाओं को आरोपित करने वाला आदमी है और यथार्थ को स्वीकार करने वाला है। आकांक्षाओं को आरोपित करने वाला चाहे कुछ भी करे, दुख में रहेगा। ऐसा नहीं है कि जो आकाक्षाओं को आरोपित नहीं करता उसको दुख नहीं आयेगा। यह मैं नहीं कह रहा हूं। दुख तो आयेंगे लेकिन वह दुख में नहीं रहेगा।

आकांक्षा है ही। हम क्या कर रहे हैं? हम उनको भी नहीं देख रहे हैं। उनके अनुकूल जगत को देखने की कोशिश में लगे हैं। आकांक्षाएं तो रियलिटी का हिस्सा हैं। वह तो यथार्थ है कि मुझ में है और मुझमें इच्छा है कि मैं अमर रहूं, यह मुझे जानना चाहिए। लेकिन बजाय इसके जानने के मैं वह शास्त्र पकड़ लूंगा जिसमें लिखा है कि हां, अमर रहना है, पक्का है और जो हमारे पक्ष में हैं वे अमर रह जायेंगे, जो हमारे पक्ष में नहीं हैं वे मर जायेंगे। मैं यह कह रहा हूं कि आदमी दुखी हैं इसलिए सुख खोजना चाहते हैं और चूंकि सुख खोजते ही रहेंगे और कभी यह न देखेंगे कि सुख और दुख एक ही सिक्के के दो पहलू हैं इसलिए कितना ही सुख खोजें, दुखी रहेंगे और सुख खोजते रहेंगे। मैं जो कह रहा हूं वह यह कह रहा हूं कि एबसर्डिटी उसको दिखायी नहीं पड़ रही है कि सुख की खोज नहीं है। एक बुनियादी भूल हो रही है। वह भूल यह हो रही है कि वह दुख को अस्वीकार करके सुख को खोज रहा है, जबकि सुख दुख का ही हिस्सा है--यानी मैं जन्म खोज रहा हूं और मरना नहीं चाहता, जवानी खोज रहा हूं और बूढ़ा नहीं होना चाहता, तो बड़ी मुश्किल बात है। जवान होना चाह रहा हूं तो बूढ़ा होना उसका हिस्सा ही होगा, वह उतरती हुई जवानी का नाम है। पूर आ गया तो उतरेगा ही, सुबह हो गयी तो सांझ होगी। अब सुबह तो मैं खोज रहा हूं और सांझ से बचना चाहता हूं और जब मैंने सुबह खोजी तभी मैंने सांझ का इन्तजाम कर दिया, अब सांझ होगी। अब अगर मैं सिर्फ सुबह को ही खोजूं, तो फिर शाम को दुख होगा और रात भर फिर सुबह की खोज करूंगा, फिर सुबह आयेगी और फिर सांझ की तैयारी शुरू होगी, मैं फिर दुखी होऊंगा। और मजा यह है कि न तो आपकी खोज से सुबह आ रही है, न सांझ हो रही है। सुबह अपने आप आ रही है, सांझ स्वयं आ रही है। आपकी जो परेशानी है वह यह है कि एक पर आप आरोप लगा रहे हैं कि बस यही रह जाय, और एक को आप कह रहे हैं कि यह न हो और उनको दोनों से आपको कोई मतलब नहीं है कि आप हो या नहीं हो, वह होते रहेंगे।

जिन्दगी में सुख और दुख घूम रहे हैं, सब घूम रहा है। आप उसमें जब चुनाव करने लगते हैं कि हम यह चुनकर रहेंगे तब आपने दुख शुरू कर दिया, वह दुख का रास्ता हो गया। जब दुखी हो गये तब और जोर से सुख खोजेंगे, जितने जोर से सुख खोजेंगे उतने जोर से दुखी होंगे। तब एक वीसियस सर्किल है जिससे बचाव मुश्किल हो जायगा, इसको देखना पड़ेगा और हमारी क्या

तकलीफ है कि अगर हम पूछते भी हैं कि हम दुखी क्यों हैं, तो हम कुछ कारण खोज लेना चाहते हैं दुख के। हमने कोई बुरा काम किया होगा इसलिए दुखी हैं, कि हमने कुछ पाप किया होगा इसलिए दुखी हैं। दूसरा आदमी सुखी है उसने कोई पुण्य किया होगा। सुखी और दुखी होना न तो पुण्य और पाप से संबंधित है, सुखी और दुखी होना हमारी आकांक्षाओं के आरोपण से संबंधित हैं। कितने जोर से आरोपित करने की आकांक्षा में रहें लेकिन किसी दिन डिसइलूजनमेंट आता है। पता चलता है कि कुछ आरोपण से नहीं होता है--सुबह आती है और आती है, सांझ आती है और आती है। तब भी सुबह आयेगी, कुछ ऐसा नहीं है कि नहीं आयेगी, तब भी सांझ आयेगी लेकिन दंश चला जायगा, पीड़ा चली जायगी और तब जितनी सुबह ठीक से जी ली है, कोई कारण नहीं कि सांझ ठीक से क्यों न जी लें। मामला यह है कि ठीक से जिसने सुबह को पूरी तरह जी लिया है वह तो खुद ही दोपहर होते होते कहेगा कि अब सांझ हो जाय। जो आदमी ठीक से जवान रह लिया है, उसके भीतर बुढ़ापे की आकांक्षा आ जायेगी। जो आदमी ठीक से जी लिया है वह मरना भी चाहता है।

नीत्से ने बहुत अच्छी बात कही है। उसने कहा है कि जब फल पक जाता है तो गिरना चाहता है। एक दफे पक भर जाय और जब पक जाता है तो गिरना ही चाहता है। सिर्फ कच्चे फल घबराते हैं कि कहीं गिर न जायं और चूंकि हम जिन्दगी भर कच्चे रह जाते हैं इसलिए मरने से डरते हैं। अब इस तरह चक्कर पर चक्कर पैदा होते चले जाते हैं। मरने से डरते हैं तो उस सिद्धांत को पकड़ते हैं जो कह दे कि मरोगे नहीं। मैं नहीं कह रहा हूं कि मर जायेंगे आप, न मैं यह कह रहा हूं कि हम अपनी आकाक्षाएं आरोपित करके जो है उसे जानने की फिक कर लें तो बात पूरी हो जायगी, नहीं तो नहीं पूरी होगी।

★

जिन्दगी अगर सपना दिखाई पड़ना शुरू हो जाय, तो भीतर आदमी शान्त होना शुरू हो जाता है

माथेरान साधना शिविर:
प्रथम उद्‌बोधन

संकलन : श्री नरेन्द्र

मैंने सुना है कि एक बहुत बड़ा राजमहल था। आधी रात उस राजमहल में आग लग गयी। आंख वाले लोग बाहर निकल गये। एक अंधा आदमी राजमहल में था। वह द्वार टटोल कर बाहर निकलने का मार्ग खोजने लगा लेकिन सभी द्वार बन्द थे, सिर्फ एक द्वार खुला था। बन्द द्वारों के पास उसने हाथ फैलाकर खोज-बीन की और वह आगे बढ़ गया। हर बन्द द्वार पर उसने श्रम किया लेकिन द्वार बन्द थे। आग बढ़ती चली गयी

जीवन एक सहज धारा

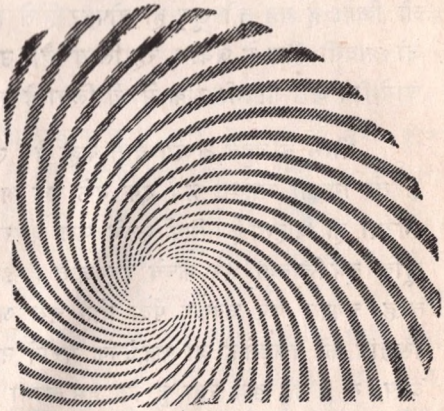

अगर कोई एक क्षण को भी न करने की हालत में रह जाय तो पा लिया सब जो पाने जैसा है

और जीवन संकट में पड़ता चला गया। अंततः वह उस द्वार के निकट पहुंचा जो खुला था। लेकिन दुर्भाग्य कि उस द्वार पर उसके सिर पर खुजली आ गयी। वह खुजलाने लगा और उस द्वार से आगे निकल गया और फिर वह बन्द द्वारों पर भटकने लगा। अगर आप देख रहे हों उस आदमी को, तो आप क्या सोचेगें? कैसा अभागा था वह अंधा आदमी कि बन्द द्वार पर श्रम किया और खुले द्वार पर उसने चोट भी न की। लेकिन यह किसी राजमहल में ही घटी घटना नहीं है, जीवन के महल में भी रोज ऐसी ही घटना घटती है। पूरे जीवन के महल में अंधकार है और आग है और एक ही द्वार खुला

है और सब द्वार बंद हैं। और बन्द द्वार पर हम सब इतना श्रम करते हैं जिसका कोई हिसाब नहीं और खुले द्वार के पास छोटी सी भूल और फिर चूक जाते हैं। फिर बन्द द्वार है। और ऐसा जन्म-जन्म से, जन्मों-जन्मों से होता है। धन का द्वार है, वह बन्द द्वार है, वह जीवन के बाहर नहीं ले जाता। यश का द्वार है, वह बन्द द्वार है, वह जीवन के पास नहीं ले जाता और भीतर लाता है। एक द्वार है जीवन के आग लगे भवन में, उस द्वार का नाम ध्यान है। वह अकेला खुला द्वार है जो जीवन की आग से बाहर ले जा सकता है। लेकिन तब सिर पर खुजली उठ आती है, पैर में कीड़ा काट लेता है और कुछ हो जाता है और आदमी चूक जाता है। फिर बन्द द्वार है और फिर बन्द द्वारों पर भटकन है।

इस कहानी से आने वाले इन दिनों की प्रारंभिक चर्चा मैं इसलिए शुरू करना चाहता हूं ताकि आप ध्यान रखें कि उस खुले द्वार के पास कोई छोटी सी चीज के कारण चूक न जायं और यह भी ध्यान रखें कि ध्यान के अतिरिक्त न कोई खुला द्वार कभी था और न है, न होगा। जो भी जीवन की आग के बाहर हैं वे उसी द्वार से गये हैं और जो भी कभी जीवन की आग के बाहर जायेगा वह उसी द्वार से ही जा सकता है। शेष सब द्वार दिखायी पड़ते हैं कि द्वार हैं, लेकिन वे बंद हैं। धन भी मालूम पड़ता है कि जीवन की आग के बाहर ले जायेगा अन्यथा कोई पागल तो नहीं है कि धन को इकट्ठा करता रहे। लगता है कि द्वार है, बस दिखता है कि द्वार है। द्वार भी खुला नहीं, बन्द है। दीवाल भी दिखती तो अच्छा था क्योंकि दीवाल से हम सिर फोड़ने की कोशिश नहीं करते। लेकिन बन्द द्वार पर तो अधिक लोग श्रम करते हैं कि शायद खुल जाय। लेकिन धन का द्वार आज तक नहीं खुल रहा है, कितना ही श्रम करें, वह द्वार बाहर नहीं ले जाता, और भीतर ले आता है। ऐसे ही बड़े द्वार हैं यश के, कीर्ति के, अहंकार के, पद के प्रतिष्ठा के। वे कोई भी द्वार बाहर ले जाने वाले नहीं हैं। लेकिन जो उन द्वारों पर खड़े हो जाते हैं उन्हें देखकर, पीछे जो उन द्वारों पर नहीं हैं, उन्हें लगता है कि शायद अब निकल जायेंगे। जिसके पास बहुत धन है, निर्धन को देखकर लगता है कि शायद धनी अब निकल जायगा—जीवन की पीड़ा से, जीवन के दुख से, जीवन की आग से, जीवन के अंधकार से। जो यश की मंजिल पर खड़े होते हैं, जो नहीं यशस्वी हैं वे भी पीछे रोते हैं और सोचते हैं बस अब यह व्यक्ति निकल जायेगा। जो खड़े होते हैं बन्द द्वार पर वे भी ऐसा भाव करते हैं कि जैसे निकलने के करीब

पहुंच गये। एक और छोटी सी कहानी से उनकी बात समझ लेनी जरूरी है :

एक अस्पताल है। उस अस्पताल में जो ऐसे रोगी हैं जिनके बचने की कोई उम्मीद नहीं है केवल उनको ही भर्ती किया जाता है। एक ही दरवाजा है, दरवाजे के पास लंबी दालान है। लंबी दालान पर मरीजों की खाटें हैं। नम्बर एक खाट का जो मरीज है वह कभी कभी सुबह उठकर कहता है, कैसा सूरज निकला है, कैसे फूल खिले हैं, पक्षी कैसे गीत गा रहे हैं! किन्तु सारे लंबे वार्ड के मरीजों को कुछ भी नहीं दिखायी पड़ता। वहां कोई द्वार नहीं, कोई खिड़की नहीं। वे मन ही मन जलते हैं कि यह मरीज कब मर जाय ताकि नम्बर एक की जगह हम पहुंच सकें। फिर उस मरीज को हृदय का दौरा आया है और सारे वार्ड के मरीज भगवान से प्रार्थना करते हैं कि यह मर जाय और उसकी जगह हमें मिल जाय। वहां से सूरज के दर्शन हमें भी हो जायं, फूल भी खिलते हैं, पक्षी गीत भी गाते हैं, चांद भी दिखता है, तारे भी दिखते हैं। धन्य है वह, उस द्वार पर सब दिखायी देता है। लेकिन वह आदमी बच जाता है और फिर सुबह उठकर कहने लगता है–कितनी सुगंध आती है, कैसी सूरज की किरणें हैं, कैसा आनंद है इस द्वार पर। कुछ समय बाद फिर दोबारा दौरा आता है उस आदमी को, फिर वे सब प्रार्थना करते हैं कि वह मर जाये। बार बार यह होता है, लेकिन वह मरीज मरता नहीं है और बार बार वह मरीज जब ठीक हो जाता है तो द्वार के बाहर झांक कर द्वार के सौंदर्य की बातें करता है। सारे वार्ड के मरीज प्रतिस्पर्धा, ईर्ष्या, जलन से भरे हैं। अंततः वह मरीज मर जाता है। सारे मरीज कोशिश करते हैं कि हमें पहली जगह मिल जाय। रिश्वत देते हैं, सेवा करते हैं डाक्टरों की। किसी तरह कोई मरीज सफल हो जाता है और पहली खाट पर पहुंच जाता है। झांक कर बाहर देखता है, तो वहां भी दीवाल है, द्वार के बाहर परकोटे की दीवाल है। न वहां सूरज दिखायी पड़ता है, न वहां कोई फूल खिलते हैं, न वहां कभी चांद आता है, न वहां कभी किरणें आती हैं। धक से रह जाती है तबियत उसकी, लेकिन अब अगर यह कहे कि नहीं कुछ है, तो सारे वार्ड के मरीज कहेंगे, मूर्ख बन गया। देखता है दीवाल को और लौटकर मुस्कुराता है और कहता है, धन्य मेरे भाग्य कैसा सूरज निकला है, कैसे फूल खिले हैं। और फिर सारे वार्ड के मरीज उसी चक्कर में परेशान हैं कि कब यह मरे और कब हमें यह जगह मिले।———— वह जो राष्ट्रपति की जगह खड़े हैं, ऐसे ही बन्द दरवाजे पर खड़े हैं जहां आगे न कोई सूरज है, न कोई रोशनी है, न कोई फूल है। वे जो धन के दरवाजे पर

खड़े हैं ऐसे ही बन्द दरवाजे पर खड़े हैं, ऐसे ही दरवाजे पर खड़े हैं जहां दीवाल है। लेकिन पीछे लौटकर वे कहेंगे, बहुत फूल खिले हैं, सूरज दिख रहा है, चांद दिख रहा है, पक्षी गीत गा रहे हैं। अगर वे यह न कहें तो मूर्ख समझे जायेंगे। लेकिन कभी-कभी उन द्वारों से भी कुछ लोग लौट पड़ते हैं हिम्मतवर, साहसी और कह देते हैं –नहीं है कुछ। कभी कोई महावीर, कभी कोई बुद्ध लौट आता है उस द्वार से और कहता है –नहीं है कुछ वहां पर। लेकिन अधिकांश अपनी नासमझी को स्वीकार करने को राजी नहीं होते और उनका यह दंभ हजारों लोगों को पागल बना देता है कि कब हम वहां पहुंच जायें। इच्छा करते हैं पूरी लेकिन सब द्वार बन्द हैं। एक द्वार खुला है, वह ध्यान का द्वार है। और मजे की बात है कि वे सब द्वार बंद हैं जो बाहर की तरफ खुलते मालूम पड़ते हैं। वह द्वार जो खुला है भीतर की तरफ खुलता मालूम पड़ता है। ध्यान का द्वार भीतर की तरफ खुलता है, धन का द्वार बाहर की

ठीक आदमी का जीवन तलवार भी होता है और शान्ति का दिया भी होता है। ये दोनों बातें जिस व्यक्तित्व में फलित होती हैं उस व्यक्तित्व को ही मैं योगी कहता हूं

तरफ खुलता है। बाहर की तरफ खुलनेवाले सब द्वार धोखे के साबित हुए हैं। कोई द्वार बाहर की तरफ नहीं खुलता है, वह खुलता ही नहीं है, वह बन्द ही है। असल में बाहर की तरफ सिर्फ दीवाल है, वहां कुछ है ही नहीं खुलने को। खुलता है वही द्वार जो भीतर की तरफ खुलता हो। लेकिन उस द्वार के पास से हम निकल जाते हैं। कोई छोटी सी बात, और सब छूट जाता है। अब इन दिनों में उसी भीतर के द्वार पर थोड़ा श्रम करने के लिए आप सबको आमंत्रित करता हूं। यहां तक आ गये हैं, यहां तक आना कठिन भी नहीं है, क्योंकि यहां तक की यात्रा बाहर की यात्रा है। अब यहां रहकर जो यात्रा करनी है वह थोड़ी कठिन है, क्योंकि वह भीतर की यात्रा है। अगर वहां कोई ट्रेन पहुंचा सकती है तो हम वहां भी पहुंच जाते। वह कितना ही ऊंचा पहाड़ हो, कितनी ही ऊंची जगह क्यों न हो वहां पहुँचने का कोई इन्तजाम कर ही लेते। लेकिन नहीं, यात्रा भीतर की है और वहीं सारी कठिनाई शुरू हो जाती है।

हमें बाहर जाने की जन्मों की आदत है। उस रास्ते से हम भलीभांति परिचित हैं, वह पहचाना है, जाना है माना है वहां कोई भूल-चूक का डर नहीं है। लेकिन एक यात्रा बिल्कुल अपरिचित है। जो भीतर की तरफ जाती है और ध्यान उसका द्वार है जो भीतर की तरफ खुलता है। उस द्वार पर स्वामी राम मजाक में कहते थे-- उस द्वार पर लिखा है 'पुल', उस द्वार पर नहीं लिखा है 'पुश'। उस द्वार पर लिखा है खींचो भीतर की तरफ, मत धकाओ बाहर की तरफ। बाहर की तरफ धकाने से वह और बन्द होता है। वह द्वार खुलता ही नहीं है बाहर की तरफ। उस पर लिखा है पुल। और हम जो बाहर के दरवाजे के आदी हैं अगर भीतर के दरवाजे पर पहुंच जाते हैं तो वहां भी पुश (धक्के) देते हैं। आदत हमारी बाहर की तरफ है। इस भीतर के दरवाजे की जो यात्रा है वह यात्रा अपने आप में कठिन नहीं है। कठिन है इस कारण कि हमारी आदत बाहर की है और आदतें इतनी खतरनाक सिद्ध हो सकती हैं कि हमें पता ही नहीं चलता। हम अपनी आदत के अनुसार चलते चले जाते हैं। हम सिर्फ आदत में ही जीते हैं और हमारी सारी आदत बाहर की तरफ है और वही कठिनाई है अन्यथा कोई कठिनाई नहीं है भीतर की तरफ जाने में। लेकिन वहां जाने का हमारा कोई अनुभव नहीं है। अनुभव सब बाहर के हैं। उन्हीं दरवाजों से टकराने के हैं जो खुलते ही नहीं। और तब हम एक दरवाजे से ऊब कर दूसरे दरवाजे को ठोंकने लगते हैं, दूसरे से ऊब कर तीसरे को ठोंकने लगते हैं। हजारों दरवाजे हैं उस महल में। लेकिन एक दरवाजा चूक जाता है। और सिर्फ कुल कारण इतना है कि हमारी सारी पकड़ बाहर की तरफ है और आदतें इतनी खतरनाक होती हैं, इतनी मजबूत और यांत्रिक होतीं हैं कि हमें पता ही नहीं चलता।

दोनों हाथ क्यों हिल रहे हैं? वैज्ञानिक कहते हैं कि दस लाख वर्ष पहले आदमी के जो पूर्वज थे वे चारों हाथ-पैर से चलते थे। बहुत बाद में आदमी दो पैर से खड़ा हुआ। वह जो चार हाथ पैर से चलते की आदत है वह अब तक पीछा पकड़े हुए है। अब चलते तो दोनों पैर से हैं लेकिन साथ में दोनों हाथ हिलते हैं। बायें पैर के साथ दायां हाथ हिलता है, दायें पैर के साथ बायां हाथ हिलता है। इससे चलने में कोई सहायता नहीं मिलती है, इससे चलने का कोई संबंध नहीं है, लेकिन दस लाख साल पहले आदमी की जो आदत थी वह पीछा कर रही है, वह पीछा किये चली जा रही है, वह जड़ आदत अपना काम जारी रखे हुए है। कभी आपने ख्याल नहीं किया होगा कि जब हमारे हाथ हिलते हैं तो हम दस

लाख साल पुराने आदमी की खबर दे रहे हैं जो चार हाथ पैर से चलता था। वह आदत कायम रह गयी। शरीर को पता ही नहीं चला आज तक कि आदमी दो पैर से चलने लगा है। शरीर को पता नहीं, शरीर दस लाख साल पुरानी आदत में ही जी रहा है।

मनुष्य साधारणतः आदत में जीता है और आदत को तोड़ना कठिनाई मालूम पड़ती है। हमारी भी सब आदतें हैं जो ध्यान में बाधा बनती हैं। ध्यान में और कोई बाधा नहीं है सिर्फ हमारी आदतों के अतिरिक्त। अगर हम अपनी आदत को समझ लें और उनसे मुक्त होने का थोड़ा सा भी प्रयास करें तो ध्यान में ऐसी गति हो जाती है, जैसे झरने के ऊपर से कोई पत्थर हटा दे और झरना बह जाय, जैसे कोई पत्थर को टकरा दे और आग जल जाय। इतनी ही सरलता से ध्यान में प्रवेश हो जाता है। लेकिन हमारी आदतें प्रतिकूल हैं। थोड़ा सा इन आदतों के संबंध में प्राथमिक रूप आज समझ लें, फिर कल से हम इनकी गहराइयों में उतरने की कोशिश करेंगे।

एक हमारी आदत है सदा कुछ न कुछ करते रहने की। ध्यान में इससे खतरनाक और कोई दूसरी आदत नहीं हो सकती है। ध्यान है न करना। ध्यान है नाट डूइंग। ध्यान है कुछ भी न करना और हमारी आदत है कुछ न कुछ करने की। हम जब भी खाली बैठते हैं तो कुछ न कुछ करते हैं। जिस आदमी को हम कहते हैं कि कुछ भी नहीं कर रहा है उसकी भी खोपड़ी में हम झाँकें तो पता चलेगा कि वह बहुत कुछ कर रहा है। आदमी अनअकुपाइड होता ही नहीं। अव्यस्त, खाली होता ही नहीं। जो आदमी खाली हो जाय वह परमात्मा को पा जाता है। खाली करने की कला ही ध्यान है और हम जानते हैं भरे होने की कला। किसी भी तरह भरे होने की कला। अगर कुछ भी नहीं तो रेडियो आदमी खोलेगा, अखबार उठायेगा। चारों तरफ झांक कर देखेगा कि कोई मिल जाय, उससे बात करें।

मैं एक ट्रेन में सफर कर रहा था। मेरे डिब्बे में एक सज्जन और थे। मैं तो आम तौर से सफर में सोया ही रहता हूं। जैसे ही कमरे के अंदर गया कि मैं सो गया। वह सज्जन बड़े बेचैन दिखायी पड़े, शायद प्रतीक्षा में होंगे कि मैं जागूं और वे कुछ बात करें। फिर कोई आधे घंटे में मैं उठा तो वे तैयार थे। उनकी तैयारी देखकर मैंने फिर आंखें बन्द कर लीं तो वे बहुत बेचैन हो गये। फिर मैं आंख बन्द किये देखता रहा कि वे क्या कर रहे हैं। वे जो अखबार लिए थे जिसे कई बार पढ़ चुके थे उसी को उन्होंने फिर से

पढ़ना शुरू किया। वह अखबार पढ़ चुके थे बहुत, उन्होंने फिर पढ़ना शुरू किया। फिर उसे नीचे पटक दिया। मैं आंख बन्द करके बीच-बीच में देख लेता हूं कि वे क्या कर रहे हैं। उनकी बेचैनी बढ़ती जा रही है, वे खिड़की खोलते हैं, फिर खिड़की बन्द करते हैं, फिर सूटकेस से कुछ निकालते हैं, फिर अंदर कर देते हैं, फिर बाथरूम में जाते हैं, फिर बाहर आते हैं, फिर मुझे हंसी आ गयी। उन्होंने कहा, आप क्यों हंसते हैं, आप अजीब आदमी हैं। चौदह घंटे होने को आये, सोचा था कि कोई आ गया तो थोड़ा साथ होगा और आप हैं कि आंखें बन्द किये पड़े हैं और मेरी जान घबरायी जा रही है। आप नहीं भी होते तो भी एक राहत थी, चलो अकेला हूं। मैंने कहा—मैं भी अनुभव कर रहा हूं और बहुत आनन्द ले रहा हूं, आपके काम देख रहा हूं। ये खिड़कियां क्यों बार बार खोलते हैं? खोलना हो तो खोल लीजिये, बन्द करना हो तो बन्द कर दीजिये। इस सूटकेस से आप क्या निकालते हैं और बार-बार उसे अंदर रख देते हैं—उन्होंने कहा, कुछ भी नहीं कर रहा हूं। आप ठीक पहचान गये, मैं किसी भी तरह से कुछ करने की कोशिश कर रहा हूं, क्योंकि खाली मन बहुत घबराता है।

आप भी अपने बाबत सोचेंगे तो ऐसी ही हालत में पायेंगे कुछ न कुछ। अगर तीन महीने आपके लिए सब कुछ व्यवस्था कर दी जाय और कहें कि खाली बैठे रहें तीन महीने तो आप छत से कूद पड़ेंगे या फांसी लगा लेंगे। तीन महीने कह रहे हैं आप! तीन घंटे बहुत हैं। कारागृहों में जो लोग बन्द किये जाते हैं उन्हें तकलीफ कारागृह की नहीं होती है। असली तकलीफ बेकाम हो जाने की होती है। इसलिए तो कारागृह में लोग गीता पर टीका लिखते हैं, गीता पर भाष्य लिखते हैं, न मालूम क्या क्या करते हैं। कोई न कोई काम चाहिए। कारागृह में जो लोग चले जाते हैं किताबें पढ़ते हैं, किताबें लिखते हैं। कोई न कोई काम, खाली होना बहुत मुश्किल है। और जो खाली नहीं हो सकता, वह ध्यान में नहीं जा सकता। ध्यान के नाम पर भी लोग काम करते हैं। कोई माला फेरता है, कोई राम राम जपता है, कोई आसन करता है, कोई शीर्षासन करता है। ध्यान के नाम पर भी कुछ करते हैं लोग और ध्यान का करने से कोई संबंध नहीं है। क्योंकि जबतक आप करते हैं तबतक मन तनाव से भरा होता है। जब आप कुछ भी नहीं करते तब मन की झील बिल्कुल मौन हो जाती है। जबतक आप कुछ करते हैं तबतक मन की झील पर तरंगें उठती रहती हैं। जब आप कुछ भी नहीं करते तो झील सो जाती है शांति से। उसी शांति से द्वार खुलते हैं।

जबतक आप कुछ करते हैं तबतक पुशिंग, धक्के जारी हैं। आप कुछ कर रहे हैं।

ध्यान रहे, करना मात्र बाहर ले जाने का दरवाजा है, न करना भीतर का दरवाजा है। अद्भुत है यह बात। अगर कोई एक क्षण को भी न करने की हालत में रह जाय तो पा लिया सब जो पाने जैसा है। खुल गये वह द्वार जो सच में खुल सकते हैं और पहुंच गये हम वहां जहां जीवन की संपदा है। एक क्षण कुछ भी न करने से आदमी वहां पहुंच जाता है जहां जन्मों जन्मों तक करने पर कोई नहीं पहुंचता। करने से आप सदैव दूसरे तक पहुंच सकते हैं, करने से अपने तक नहीं पहुंच सकते। अगर आपके पास मुझे आना हो तो चलना पड़ेगा क्योंकि आपके और मेरे बीच में फासला है। अगर नहीं चलूंगा तो फासला पूरा नहीं होगा। लेकिन मुझे मुझ तक ही जाना हो, तो चलने की कहां जरूरत है क्योंकि वहां कोई फासला नहीं है। अगर दूसरे तक जाना हो तो चलना जरूरी है। अगर अपने तक जाना है तो रुक जाना जरूरी है। अगर कुछ और पाना है तो कुछ करना जरूरी है, अगर खुद को ही पाना है तो करना जरूरी नहीं है क्योंकि मैं हूं, मुझे करके पाने का कोई सवाल नहीं है। मैं हूं ही। जो है

मैं तो वही हूं। मैं तो अब भी देख रहा हूं। जिन्दगी भर जिसने देखा है वह मौत को भी देख सकता है। और जो मौत को देख सकता है उसकी मौत कैसे हो सकती है?

ही उसे कुछ करके नहीं पाया जा सकता, जो नहीं है उसे कुछ करके पाना होता है। अगर धन पाना है तो कुछ करना पड़ेगा। न करने से धन नहीं मिल जायेगा। अगर यश पाना है तो कुछ करना पड़ेगा, न कुछ करने से यश नहीं मिल जायेगा। लेकिन अगर स्वयं को पाना है तो कुछ भी किया तो भटक जाइएगा क्योंकि वह है, वह है ही। जब आपको लग रहा है तब भी वह है। उसे कुछ करके पाने का सवाल नहीं है, उसे न करके पाना होगा और यह राज की बात ठीक से समझ लेनी चाहिए। दुनिया की सब चीजें करके पायी जाती हैं, स्वयं को न करके पाया जाता है। धर्म न करने से उपलब्ध होता है अधर्म करने से उपलब्ध होता है। अधर्म करने से उपलब्ध होता है इसलिए कुछ भी करिए अधर्म होगा। मंदिर बनाइए तो अधर्म होगा, धर्मशाला बनाइए तो अधर्म होगा, कुछ भी करिए,

क्योंकि करना ही बाहर से जोड़ता है लेकिन एक बार न करने की हालत मिल जाय तो वह मिल जाता है जो धर्म है। और यह और मजे की बात है कि जो न करने को जान लेता है वह कर्ता है तो भी अकर्ता है। फिर वह कुछ भी करता है उससे कोई फर्क नहीं पड़ता है। महावीर भी चलते हैं, भोजन भी मांगते हैं, बोलते भी हैं, सोते भी हैं, उठते भी हैं, सब करते हैं, लेकिन अकर्ता बने रहते हैं, करने से कोई भी संबंध नहीं रहा। न करना ऐसे जैसे कोई अभिनेता है किसी नाटक में काम कर रहा हो, वह सब करता है और भीतर कुछ भी नहीं करता है। वह राम बनता है, और सीता के खो जाने पर छाती पीटकर रोता है। और भीतर ? न वह छाती पीटता है, न वह रोता है। वह राम बन जाता है और लंका के लिए लड़ता है और लंका जल जाती है और राम रात मजे से सो जाता है और वह भीतर नहीं कुछ छूता, अभिनय रह जाता है बाहर। इसीलिए कृष्ण के चरित्र को हम चरित्र नहीं कहते, कृष्ण के चरित्र को कहते हैं लीला। सब के चरित्र को चरित्र कह देते हैं और राम के चरित्र को चरित्र कहते हैं, लेकिन कृष्ण के चरित्र को नहीं कहते हैं। और लीला और चरित्र में कुछ फर्क है। लीला का मतलब है – अभिनय। इसलिए कृष्ण जैसा अनूठा आदमी खोजना दुनिया में मुश्किल है। वह सब तरह के काम कर लेता है क्योंकि उसमें चरित्र का सवाल नहीं है, उसमें सब मामला लीला का है, वह किसी नाटक का हिस्सा है, इससे ज्यादा नहीं है। वह ऐसे काम कर लेता है जिसकी हम कभी कल्पना नहीं कर सकते। दस औरतें खड़ी होकर नाच रही हैं तो उनके बीच में खड़ा होकर नाच लेता है। हमारी कल्पना के बाहर हो जाता है, यह आदमी क्या कर रहा है ? लेकिन कृष्ण कहते हैं, यह है लीला, इधर कोई चरित्र नहीं है। हम कुछ कर ही नहीं रहे हैं। भीतर न करना कायम है, बाहर सब करना चल रहा है। चरित्र एक दिन लीला बन जाय उसी दिन से धर्म शुरू होता है। जबतक चरित्र बना रहे तबतक हम अधर्म के हिस्से होते हैं और चरित्र लीला उसी दिन बनता है जिस दिन भीतर हम अकर्ता को अनुभव करते हैं जो बिना किये कुछ करने से मिलता है। ध्यान इसलिए करना नहीं है, और हमारी आदत है करने की। हम कुछ भी पूछें तो हम करने की आदत में हैं। जब कोई हमसे कहे कि कहां जा रहे हो ? तो हम यह कह सकते हैं कि ध्यान करने जा रहे हैं। हमारी आदत है वह, हम जब ध्यान को भी करेंगे तो कहेंगे ध्यान करना है क्योंकि हमें पता ही नहीं है कि ध्यान का करने से कोई भी संबंध नहीं है। ध्यान न करना है।

जापान में एक फकीर था। उसका एक अच्छा सा आश्रम था। उस आश्रम

की बड़ी ख्याति थी और खुद सम्राट जापान का उसके आश्रम को देखने गया था। और वह फकीर आश्रम के एक एक झोंपड़े के सामने ले जाकर बताने लगा कि यहां भिक्षु स्नान करते हैं, यहां भिक्षु भोजन करते हैं, यहां भिक्षु विश्राम करते हैं। और सारे झोंपड़ों के बीच में बड़ा एक भवन था। सम्राट बार बार पूछने लगा उससे--ठीक है, झोंपड़े में नहाते हैं। उस भवन में क्या करते हैं? वह इस भवन की बात ही न करे जैसे वह भवन है ही नहीं। फिर सम्राट घूमकर वापस द्वार पर आ गया और वह जो भवन था बीच में उसने उसकी बात ही न उठायी। सम्राट क्रोध से भर गया है। द्वार पर अपने घोड़े पर बैठते हुए उसने कहा कि या तो तुम पागल हो या पागल मैं हूं। तुम्हारा आश्रम देखने आया था, तुमने झोंपड़े दिखाये कि यहां भिक्षु खाना खाते हैं, यहां स्नान करते हैं, क्या जरूरत है इसको दिखाने की और वह जो बड़ा भवन बीच में खड़ा है, मैंने तुमसे पच्चीस बार पूछा कि वहां क्या करते हैं? और तुम ऐसे बहरे हो जाते हो जैसे तुमने सुना ही नहीं। वह भिक्षु फिर भी हंसने लगा। उसने कहा, नमस्कार।

अगर प्यास है तो उसके साथ पूरा संकल्प भी चाहिये। गंगा के द्वार बंद नहीं हैं, गंगा के द्वार खुले हैं लेकिन पात्र तो चाहिये। संकल्प का पात्र जहां नहीं है वहां साधना की कोई तृप्ति, कोई संतोष कभी उपलब्ध नहीं होता

सम्राट ने कहा, तुम्हें सुनायी नहीं पड़ता है, मैं पूछता हूं उस भवन में क्या करते हैं? उस भिक्षु ने कहा, माफ कीजिये, आप गलत प्रश्न पूछते हैं तो मैं उत्तर कैसे दूं क्योंकि उत्तर गलत प्रश्न का देने से गलत ही हो जाता है। आप प्रश्न ही गलत पूछते हैं। उस भवन में हम कुछ भी नहीं करते हैं। आप पूछते हैं वहां क्या करते हैं, तो मैं समझ गया कि यह आदमी रने की भाषा समझता है, तो मैंने दिखाया कि यहां स्नान करते हैं, यहां भोजन करते हैं। मैं समझ गया कि यह आदमी करने की भाषा समझने वाला आदमी है। न करने की भाषा नहीं समझ सकता। वहां हम कुछ भी नहीं करते और तुम पूछते हो की वहां क्या करते हो, तो मैं चुप रह जाता हूं कि अब मैं क्या कहूं। उस सम्राट ने कहा, कुछ भी नहीं करते? कुछ तो करते होगे। यह बनाया है किस लिए? उसने कहा, आप माफ करिए।

फिर आप कभी आना। वहां सच में ही कुछ नहीं करते, बनाया जरूर है। और अगर मैं आपसे कहूं तो आप शायद नहीं समझ पायेंगे। वह हमारा ध्यान भवन है, मेडीटेशन हाल है। उस सम्राट ने कहा--ठीक है तो यह क्यों नहीं कहते कि ध्यान करते हैं ? तो उस फकीर ने कहा--यही तो मुश्किल है। स्नान किया जा सकता है, भोजन किया जा सकता है, व्यायाम किया जा सकता है लेकिन ध्यान नहीं किया जा सकता। न करने का नाम ध्यान है।

हम भी स्नान करने की भाषा समझते हैं। हम सोचते हैं कि ध्यान करना भी कोई क्रिया होगी। कई नासमझ तो यह भी समझाते हैं कि वह भीतरी स्नान है, आत्मिक स्नान है। जैसी शीतलता नहाने से मिलती है वैसी शीतलता ध्यान से भी मिलती है। लेकिन करने की भाषा में जबतक आप समझेंगे, आप नहीं समझ पायेंगे, क्योंकि करने की भाषा की आदत ही बाधा है। आप इन दिनों में इस बात पर खूब ख्याल कर लेना। ध्यान करना जिसे कह रहे हैं वह न करना है। उस वक्त कुछ भी नहीं करना है। सब करना छोड़ देना है। सिर्फ रह जाना है। यह समझ में नहीं आता ? हम रास्ते पर चलते हैं वह चलना हुआ। भोजन करते हैं वह भोजन करना हुआ। सोते हैं वह सोना हुआ। बैठते हैं वह बैठना हुआ। उठते हैं वह उठना हुआ। ये सब क्रियाएं हैं। इन सारी क्रियाओं को करने वाला भीतर कोई है। जब हम क्रिया कर सकते हैं तो अक्रिया क्यों नहीं कर सकते हैं ? अगर मैं हाथ खोल सकता हूं तो हाथ बन्द क्यों नहीं कर सकता ? अगर मैं आंख खोल सकता हूं तो आंख बन्द क्यों नहीं कर सकता ? जो भी हम कर सकते हैं उससे उल्टा भी हो सकता है। अबतक हमने जीवन में करने की ही एकमात्र दिशा जानी है, न करने की हमने कोई दिशा नहीं जानी। तो हमें पता ही नहीं, जब हम करते हैं किसी से प्रेम की बात तो भी हम उससे कहते हैं कि मैं प्रेम करता हूं। हालांकि जिनको भी कभी प्रेम का अनुभव हुआ होगा उन्हें पता है कि प्रेम किया नहीं जाता। वह क्रिया नहीं है। आप प्रेम कर ही नहीं सकते। या करें कोशिश, आधा घड़ी किसी को पास बिठा लें और प्रेम करने की कोशिश करें तो आधा घड़ी में सिर फट जायेगा--उसका भी और आपका भी। और पता चलेगा कि किया नहीं जा सकता प्रेम। प्रेम होता है, किया नहीं जा सकता। लेकिन हम तो प्रेम को भी करने की भाषा में सोचते हैं। हमारी करने की आदत इतनी मजबूत हो गयी कि हम जो भी सोच सकते हैं वह करने की भाषा में सोच सकते हैं। हम तो यह भी कहते हुए सुने जाते हैं कि श्वास लेते हैं। हालांकि आपने कभी श्वास नहीं ली अपने जीवन में अभीतक और न कभी

आप ले सकते हैं। श्वास चलती है और अगर आप श्वास लेते होते तो मरना मुश्किल हो जाता और मौत दरवाजे पर खड़ी हो जाती और आप कहते कि खड़ी रहो--हम तो श्वास ले रहे हैं, हम श्वास लेते रहेंगे। लेकिन हमें पता है मौत दरवाजे पर हो तो फिर श्वास-वास लेते नहीं, वह गयी। श्वास किसी आदमी ने कभी नहीं ली लेकिन हम ब्रीदिंग को भी क्रिया बनाये हुए हैं। कहते हम ऐसे ही हैं जैसे श्वास प्रश्वास भी एक क्रिया है। क्रिया नहीं है, एक घटना है। हम नहीं कर रहे हैं उसे, वह हो रही है। वह जो हमारे भीतर बैठा हुआ है उसे करने की कोई जरूरत नहीं है। वह है और वह सदा से है और उसको मिटाने का भी कोई उपाय नहीं है। वह सदा होगा। उसका होना अगर जानना है तो करने से मुक्त हुए बिना जानना बहुत मुश्किल है। क्योंकि जबतक हम करने में उलझे होते हैं तबतक होने का पता नहीं चलता। करना यानी डूइंग, होना यानी बीइंग। जो अपने डूइंग में उलझा हुआ है उसको पता नहीं चलता कि क्या

नेकी का फल बदी से मिल रहा है - हमेशा मिलेगा। क्योंकि नेकी अपमान करती है किसी का। नेकी तुम्हारे अहंकार को मजबूत करती है और दूसरे मनुष्य को पीड़ित करती है

है भीतर। जब सारी क्रिया छूट जाती है एक क्षण को और सिर्फ होना रह जाता है। जैसे हवाएं चल रही हैं और वह वृक्ष है, पत्ते हिल रहे हैं। लेकिन क्या वृक्ष पत्ते हिलायेंगे ? हवाएं चल रही हैं, तो पत्ते हिल रहे हैं, श्वास चल रही है यह सब हो रहा है। ध्यान की अवस्था का मतलब है होने से छूट जाय, जो हो रहा है होने दें। विचार भी चल रहा है तो चलने दें। आप कौन हैं रोकने वाले ? जो हो रहा है होने दें, लेट इट बी। जो भी हो रहा है, पत्ते हिल रहे हैं, हवा चल रही है, आकाश में तारे निकले हैं, कोई बच्चा रो रहा है, कोई देख रहा है, चिल्ला रहा है। भीतर विचार चल रहे हैं, धड़कन चल रही है, श्वास चल रही है, खून बह रहा है, सब चल रहा है। इस सब चलने को होने दें। आप कुछ भी न करें, आप बस रह जायं। अगर एक क्षण को भी, यह एक क्षण का स्पंदन भी अनुभव हो जाय रह जाने का, तो ध्यान में गति हो गयी। वह जो भीतर खुलने वाला द्वार है वह खुल गया। उसकी एक झलक मिल

जाये फिर कुछ नहीं है शेष। फिर हम पहचान गये रास्ता, फिर तो हम जा सकेंगे और गहरे और गहरे और गहरे !

करने की आदत से थोड़ा सावधान रहें। यहां भूल कर भी कोई यह सोचकर न आये कि हम ध्यान करने जा रहे हैं। कल सुबह से हम बैठेंगे ध्यान के लिए। अब बैठेंगे तो वह भी क्रिया है, करेंगे वह भी क्रिया है, आयेंगे-जायेंगे वह भी क्रिया है। आदमी की सारी भाषा क्रिया है और परमात्मा की भाषा अक्रिया है और वह तो कुछ भी नहीं कर रहा है। वह जो लोग कहते हैं कि परमात्मा ने दुनिया को बनाया है निहायत नामसझी है, क्योंकि वह अपनी भाषा में सोच रहे हैं, करने की भाषा में कि परमात्मा ने दुनिया बनायी—जैसे कुम्हार घड़ा बनाता है। परमात्मा ने दुनिया कभी नहीं बनायी। परमात्मा से दुनिया बन रही है। यह कोई कांसस ऐक्ट नहीं है, वह कोई क्रिया नहीं है परमात्मा की कि बैठा है और दुनिया बना रहा है। दुनिया बन रही है। यह बनाने की घटना घट रही है, कोई बना नहीं रहा है कहीं बैठकर। जैसे आप श्वास ले रहे हैं बस ऐसे ही सारे जीवन का प्रवाह चलता है। करने का भ्रम सिर्फ आदमी को पैदा हो गया है। न पक्षियों को यह भ्रम है, न पौधों को यह भ्रम है, न आकाश के बादलों को यह भ्रम है, न चांद-तारों को यह भ्रम है, किसी को यह भ्रम नहीं है। आदमी को यह भ्रम है कि हम करते हैं और यह करने का भ्रम जीवन में पत्थर की तरह बैठ जाता है। इससे बड़ा कोई झूठ नहीं कि हम करते हैं। सब होता है और जिस व्यक्ति को ध्यान में जाना है उसे ठीक से समझ लेना चाहिए कि सब हो रहा है। तो यह भी कोशिश न करें कि मैं शांत हो जाऊं क्योंकि शांत करने वाली कोशिश से ज्यादा अशांत करने वाली दुनिया में और कोई चीज नहीं है। यह भी कोशिश मत करें कि मैं पवित्र हो जाऊं। यह भी कोशिश मत करें कि मैं भगवान को उपलब्ध हो जाऊं। आपकी कोई कोशिश कारगर नहीं होगी। उसके सामने कोई कोशिश कारगर नहीं होती। वहां कोई 'एफर्ट' नहीं चलता। वहां कोई प्रश्न नहीं चलता, वहां कोई प्रयास नहीं चलता। वहां तो वे पहुंच जाते हैं जो कुछ भी नहीं करते, जिनका यह भ्रम ही छूट जाता है कि हम कुछ कर सकते हैं।

इन आने वाले तीन दिनों में इस बात का बहुत ध्यानपूर्वक बोध करना है। इस बोध को जितना गहरा होने देंगे उतना ध्यान में परिणाम होगा। ध्यान तो हम सुबह बैठेंगे, रात बैठेंगे और तीन दिन उसी द्वार पर मेहनत करनी है। लेकिन चौबीस घंटे यहां आप होंगे तीन दिन। इन तीन दिनों में यह दरवाजा

चूक न जायं, उसके लिए ख्याल रखें। चौबीस घंटे बोध रखें कि मैं कुछ भी नहीं कर रहा हूं, हो रहा है। चल रहा हूं तो समझें कि चल रहा हूं यह हो रही है क्रिया। श्वास ले रहा हूं तो यह हो रही है। भूख लगी है तो हो रही है, प्यास लगी है, तो हो रही है। तीन दिन सतत इस बात का स्मरण रहे कि ये चीजें हो रही हैं। मैं कर नहीं रहा हूं। आप हैरान हो जायेंगे कि इतनी विश्राम की दशा चित्त को उपलब्ध हो जायगी, इतनी शांति हो जायगी, सब इतना ठहर जायगा, भीतर कुछ इतनी गहराई पैदा होगी जो कभी नहीं ख्याल में आयेगी कि इतनी गहराई हो सकती है। और फिर ध्यान के लिए हम बैठेंगे तो उसमें वह झलक शीघ्रता और गति से पैदा हो जायेगी। लेकिन चौबीस घंटे जो भी हो रहा है उसको इस तरह लें कि वह हो रहा है और सच में वह हो ही रहा है। वही है सत्य। कभी आपने भूख लगायी है आज तक? कभी नींद ला सके हैं आप? वह सब हो रहा है। कभी एकाध दिन नींद लाने की कोशिश करें तो उस रात नींद नहीं आयेगी जिस रात आप नींद लाने की कोशिश करेंगे। जिसको नींद नहीं आती उसका कारण यही है कुल जमा कि वे नींद लाने की कोशिश में बुरी तरह दीवाने हैं। अब नींद लाने की कोशिश से नींद आ सकती है कभी। सब कोशिश नींद को तोड़ देगी, क्योंकि नींद विश्राम है और कोशिश श्रम है। कहीं भूख लग सकती है लगाने से? प्यास लग सकती है? प्रेम जग सकता है? श्वास चल सकती? कुछ भी नहीं। जिन्दगी का जो भी गहरा है वह चुपचाप हो रहा है, वह अपने आप हो रहा है। फूल खिल रहे हैं अपने आप, कोई गुलाब का फूल खिला नहीं रहा है और अगर दिमाग खराब हो जाय और कोई फूल खिलाने लगे तो समझ लेना कि उस समय फूल नहीं खिलेंगे। फूल खिलते हैं। पूरी जिन्दगी सहज एक धारा है सिर्फ आदमी के दिमाग को छोड़कर। वहां एक जिच पैदा हो गयी, वहां एक पत्थर खड़ा हो गया है और उस पत्थर ने सारी अड़चनें डाल दी हैं। वह पत्थर यह है कि हम कर रहे हैं। तो हम ध्यान भी करते हैं और प्रार्थना भी करते हैं और यह करने में लग जाते हैं और सब उलझ जाते हैं। कहीं भी हम भीतर नहीं पहुंच पाते हैं। इन तीन दिनों में नहीं कुछ कर रहे हैं, बस—हैं इसका भाव। इसका भाव जितना गहरा हो सके। अभी यहां से जाते वक्त भी, चलते वक्त भी ऐसा ही अनुभव करना कि चलना हो रहा है। होटल की तरफ आप जा नहीं रहे हैं, जाना हो रहा है, आपका सारा व्यक्तित्व जा रहा है, सोने के लिए बिस्तर पर जा रहा है। आपका सारा व्यक्तित्व आप नहीं ले जा रहे हैं।

यह उतनी ही प्राकृतिक घटनाएं हैं जैसे हवा चले और पत्ते हिल रहे हों। इसी तरह आप दिन भर में थक गये हैं और शरीर का रोआं रोआं मांग कर रहा है कि बस, अब बस। वह पूरा शरीर मांग कर रहा है–सो जाओ। वह आपकी मांग नहीं है, वह उतनी ही प्राकृतिक मांग है जैसे कोई फूल गिर गया हो, जैसे कोई पत्ता सूख गया हो और हवा में गिर गया हो। यह उतनी ही प्राकृतिक घटना है, यह उतनी ही सहज घटना है। जब पेट में भूख लगती है तो क्या कोई कुछ कर रहा है? वह सब प्राकृतिक हो रहा है। यह हम नहीं कहते कि पानी गर्म हो जाय और भाप बनकर उड़ने लगे। हम यह थोड़े ही कहेंगे कि पानी भाप बनकर उड़ रहा है। हम कहते हैं पानी भाप बन गया है।

जिन्दगी के जो नियम चारों तरफ हैं वे ही नियम हम पर भी हैं। हम जिन्दगी में कोई अपवाद नहीं हैं। आदमी प्रकृति का एक हिस्सा है और जो व्यक्ति यह समझ लेगा कि हम प्रकृति के हिस्से हैं वह इसी वक्त ध्यान में जा सकता है, इसी क्षण। क्योंकि तब यह ख्याल मिट गया है कि हमें करना है। तब चीजें होंगी, ध्यान आयेगा। आप ला नहीं सकते। और उस द्वार से आप चूक न जायं तो उसके लिए कुछ स्मरण रख लेना है। पहला, यह कर्तृत्व का, करने का ख्याल बिल्कुल जाने देना, फिर कहीं ध्यान की दुनिया में प्रवेश करना। तो मैं कुछ कर सकता हूं, वह ख्याल जाने दें। तीन दिन में स्मरण रखें और बहुत अद्‌भुत अनुभव होंगे। अगर चलते वक्त आपको यह ख्याल आ जाय कि चल नहीं रहा हूं, यह चलने की क्रिया उसी तरह हो रही है जैसे चांद चल रहा है, पृथ्वी चल रही है, तारे चल रहे हैं। ठीक यह उसी तरह चलने की क्रिया हो रही है। यह सारा का सारा जगत जैसे चल रहा है उसी में मेरा चलना भी एक हिस्सा है, तो आप एकदम चौंकेंगे, कुछ नया ही अनुभव करेंगे, जो आपने कभी अनुभव नहीं किया था। आप अंदर से पायेंगे कि कुछ और ही बात है, अब कोई दूसरा आदमी खड़ा है, आप नहीं। खाना खाते वक्त खाने की क्रिया हो रही है, स्नान करते वक्त स्नान की क्रिया हो रही है, चीजें हो रही हैं आप कुछ भी नहीं कर रहे हैं। अनायास एक गहरी शांति चारों तरफ घेर लेगी, भीतर एक सन्नाटा छा जायगा और इन तीन दिनों में कोई कारण नहीं कि जिस द्वार पर हम आमतौर से बचकर निकल जाते हैं उस द्वार पर हम रुक जायें। वह द्वार हमें दिख जायेगा, हम बाहर हो जायेंगे। यह हो सकता है, यह हुआ है, यह किसी से भी हो सकता है और इसके लिए कोई विशेष पात्रता नहीं चाहिए, एक बस मिटने की पात्रता चाहिए। होने का ख्याल बहुत

ज्यादा है कि मैं हूं। वही बाधा डालता है और कोई बाधा नहीं डालता है। न कोई पाप रोकता है किसी को, न कोई पुण्य पहुंचाता है किसी को। पाप भी रोकता है क्योंकि पापी का ख्याल कि मैं कर रहा हूं। अगर पापी का यह ख्याल मिट जाय कि मैंने किया और पापी अगर यह जान ले कि यह सब हुआ तो पापी भी इसी रास्ते से जायगा इसी क्षण। और पुण्यात्मा को अगर पता चले कि यह सब हुआ तो पुण्यात्मा भी इसी क्षण पहुंच जायगा। न पाप रोकता है, न पुण्य पहुंचाता है। मैं कर रहा हूं—यह अहंकार भर रोकता है। पापी को भी यही रोकता है, पुण्यात्मा को भी यही रोकता है। वह कर्तृत्व का ख्याल रोकता है और हम कर्तृत्व के ख्याल से इतने भरे हैं कि हमें लगता है कि अगर हम थोड़ी देर कुछ न करेंगे तो हम मिट ही न जायेंगे, मर ही न जायेंगे। हेजीटेट करने लगेंगे, अगर हम न कुछ करेंगे। लेकिन बिना कुछ किये कितना बड़ा संसार चल रहा है, बिना कुछ किये कितना विराट आयोजन चल रहा है। बिना कुछ खबर दिये, बिना कोई इशारा किये कितने तारे चल रहे हैं। कितनी

सत्य के मार्ग पर कोई राजपथ नहीं बने हैं। कोई बंधे बँधाये रास्ते नहीं हैं। प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं ही अपना रास्ता बनाना पड़ता है

पृथ्वियां हैं तारों में, कितने जीवन हैं, अंतहीन है, कुछ पता नहीं। इतना सब चल रहा है बिना किसी के कुछ किये। अगर भगवान कुछ करता तो भूल-चूक भी होतीं। करने में भूल चूक होती है। कभी भगवान को नींद भी लग जाती है, दो तारे टकरा जाते हैं। कभी गलत सूचना मिल जाती है। न मालूम क्या क्या होता है, लेकिन भगवान कुछ नहीं कर रहा है, इसलिए कोई गल्ती नहीं होती। न करने में गलती हो कैसे सकती है? चीजें हो रही हैं, चीजों का एक सहज स्वभाव होता है, उससे हो रही हैं। धर्म का अर्थ है, स्वभाव का अर्थ है जो होता है, किया नहीं जाता। ध्यान स्वभाव में ले जाने का द्वार है। और ध्यान करने से नहीं होता है। इसलिए जहां जहां लोग सिखाते हैं कि माला फेरो और ध्यान हो जायगा. राम राम जपो ध्यान हो जायेगा, ओम् जपो ध्यान हो जायगा, गायत्री जपो ध्यान हो जायेगा, सब व्यर्थ चला जाता है। वहीं किसी को कुछ भी पता नहीं है कि ध्यान का मतलब क्या है? ध्यान कुछ भी करने

से नहीं होता है। ध्यान न करने से होता है। कुछ न करो और ध्यान हो जायेगा। कुछ कर रहे हैं हम इसलिए ध्यान नहीं हो पा रहा है। कुछ कर रहे हैं हम और करने में उलझे हैं इसलिए ध्यान नहीं हो पा रहा है।

बुद्ध के जीवन की एक घटना बहुत अद्‌भुत है। बुद्ध ने ६ वर्ष तक कठिन तपश्चर्या की। जो भी किया जा सकता था वह बुद्ध ने किया। उपवास किये, शरीर का दमन किया और ऐसी शरीर की हालत हो गयी कि नदी में नहाने को उतरे थे तो घाट पकड़ कर चढ़ने की हिम्मत न थी। एक जड़ को पकड़-कर लटक गये। बेहोशी आ गयी। इतनी ताकत न थी शरीर में। ६ वर्ष जो भी किया जा सकता था सब किया और मजा यह कि ६ वर्ष में कुछ भी नहीं मिला। कुछ मिला ही नहीं, कौड़ी भर कुछ नहीं मिला उनको। उस नदी में नहाते वक्त बेहोशी आ गयी कमजोरी के कारण। शरीर बिल्कुल हड्डियां रह गया, तो ख्याल आया बुद्ध को उस बेहोश हुए क्षण में कि नदी पार नहीं कर सकता हूं और भवसागर पार करने की कोशिश कर रहा हूं। कैसे होगा? नदी का पार करना भी मुश्किल हो गया है, तो ६ वर्ष जो भी किया था, प्रतीत हुआ व्यर्थ गया। कुछ सार नहीं पाया, कुछ मिला नहीं। तो उस दिन थक के सब छोड़ दिया। निकल के नदी के पार एक वृक्ष के नीचे बैठे थे, तो सुजाता ने खीर दी। वह बुद्ध को नहीं दी थी खीर। उसने कुछ मनौती मानी थी उस झाड़ के देवता के लिए और जब सुजाता वहां आयी तो बुद्ध को देखकर समझी कि देवता प्रसन्न हुआ है और झाड़ से निकला है। दूसरे दिन कभी वह आयी होती तो उसकी खीर न खाते क्योंकि बुद्ध उपवासे रहते थे। आज उन्होंने सब छोड़ दिया है। भूख लगी थी। भूख लगानी थोड़े पड़ती है। उपवास करना पड़ता है। भूख लगती है। ध्यान रहे उपवास करना पड़ता है और करने में भय हो सकता है, क्योंकि करना हमारा किया हुआ है। उससे अहंकार मजबूत होता है।

इसलिए उपवास करनेवाले अखबारों में खबर छपाते हैं कि फलाने महा-राज ने इतने उपवास किये। लेकिन फलाने महाराज को इतनी भूख लग रही है इसको छपाने की कोई जरूरत नहीं पड़ी, क्योंकि भूख लगती है। उसमें महाराज के करने जैसा कुछ भी नहीं है, वह अपने आप आती है। वह भगवान से आती है इसलिए भूख का कोई हिसाब नहीं रखता है, उपवास का हिसाब रखना पड़ता है। उस दिन से बुद्ध ने करना छोड़ दिया। थक गये थे। अब कहा, ६ वर्ष बहुत कर लिया, कुछ नहीं करना है। वृक्ष के नीचे बैठे थे, भूख लगी थी। उस लड़की ने कहा कि लायी हूं खीर ले लो। बुद्ध ने खीर ले ली। यह पहला मौका

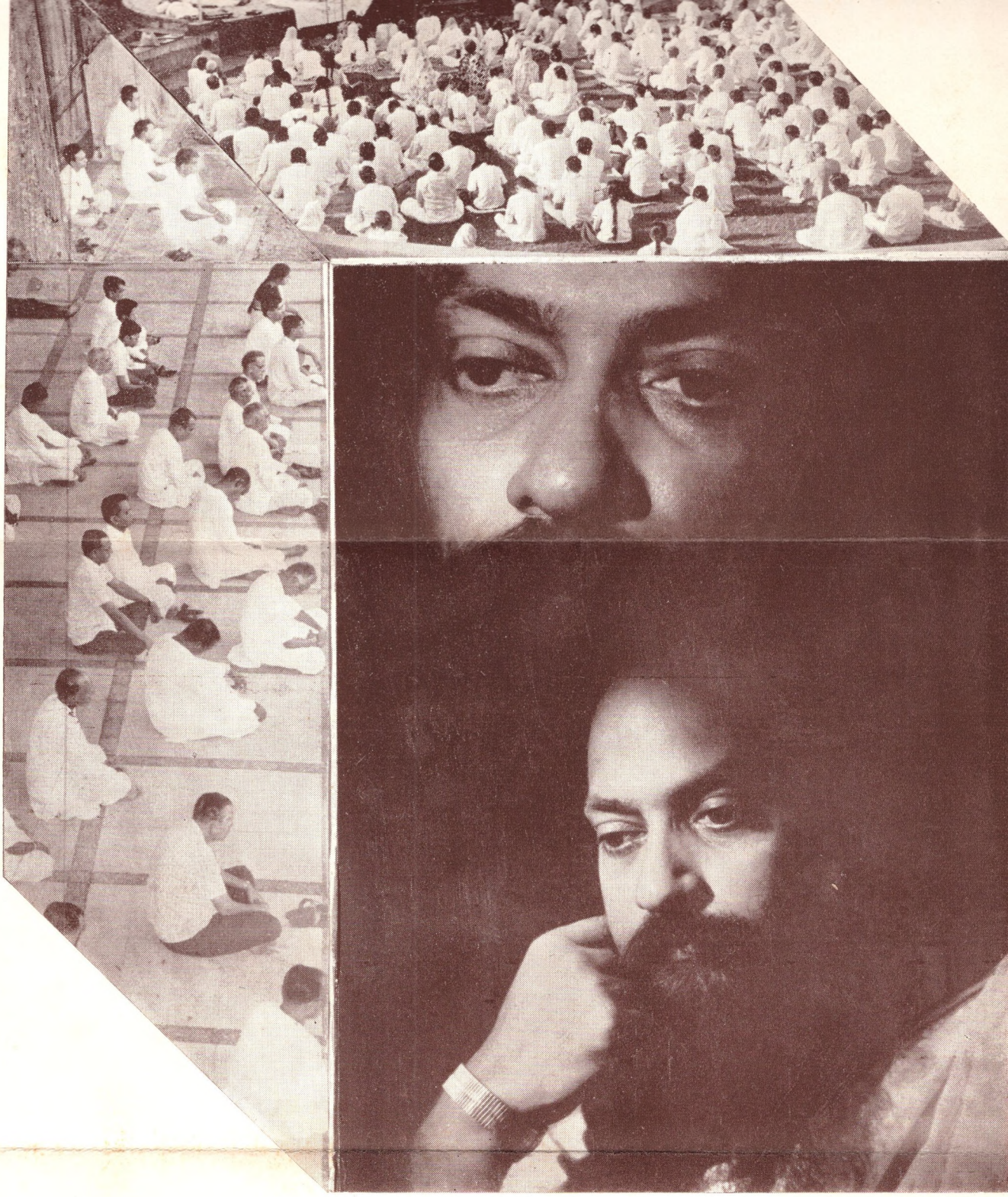

ध्यान की प्रक्रिया में—

शिथिल अँग हो, मुदित लोचन, मौन, शान्त विचार;
बह रहे हो ज्यों सरित में सहज, तुम निर्भार,

मिट गये तुम, और सारे खो गये आधार,
सजग द्रष्टा बन निहारो शून्य पारावार।

यह निरन्तर कल्प हो,
साधना, संकल्प हो;
तब कहीं गहरे, किसी दिन, हो सके विस्फोट,
और हो अनुभूति—सागर था पलक की ओट!

था जब हमने भोजन के साथ सरल व्यवहार किया। सरल व्यवहार जीवन के साथ नहीं होता है उसमें भी कठिनाई है। सुजाता तो शूद्र है, बुद्ध ने नहीं पूछा कि कौन लाया? क्योंकि भूख बिल्कुल नहीं जानती कि शूद्र ने बनाया कि ब्राह्मण ने बनाया। वह सिर्फ आदमी का अहंकार जानता है कि किसने बनाया। कौन लाया, क्या है, वह भूख कुछ जानती नहीं। भूख के लिए न कोई शूद्र है, भूख के लिए भोजन चाहिए। बुद्ध ने पूछा ही नहीं कि तू कौन है? सुजाता नाम था उसका, उससे पता चल जाता कि वह शूद्र थी, नहीं तो सुजाता नाम नहीं रखती। हमेशा हमारे सब नाम उल्टे होते हैं। जो हम नहीं होते हैं उसको नाम में बताने की कोशिश करते हैं। वह अच्छी जाति से पैदा नहीं हुई थी इसलिए सुजाता नाम रहा होगा। अच्छी जाति वाला आदमी काहे के लिए सुजाता नाम रखेगा। वह जो भीतर है उसको छिपाने की कोशिश चलती है। सुबह पांच-छः बजे बुद्ध उठे। बुद्ध को भूख लगी थी, उन्होंने भोजन कर लिया। फिर नींद आयी सो गये। यह नींद के साथ भी पहला सद्व्यवहार था। इसके पहले इतनी देर सोना चाहिए और इतने वक्त सोना चाहिए और इतने वक्त उठना चाहिए यह सब नियस उपनियम थे। आज नींद आयी तो बुद्ध सो गये। आज उन्होंने नहीं कहा कि अभी नहीं, अभी मेरा समय नहीं हुआ है और अभी सो जाऊंगा तो फिर ज्यादा नींद हो जायगी। साधु-संन्यासी के सब नियम होते हैं इसलिए साधु-संन्यासी कभी कहीं नहीं पहुंचते। नियम वाला आदमी कभी कहीं पहुंच नहीं सकता, क्योंकि नियम वाला आदमी आदतें बनाता है। स्वभाव के नियम होते हैं अपने। उसको हमें नहीं जानना पड़ता है। जब नींद आयी तो शरीर कह रहा है, प्राण कह रहे हैं– सो जाओ और अगर जागने का वक्त आयेगा तो शरीर कहेगा, प्राण कहेंगे– उठो। न अपनी तरफ से सोना, न अपनी तरफ से जागना और तब वह नींद उपलब्ध होगी जो परमात्मा की है। जब शरीर कहे, भोजन कर लो तो कर लेना, जब भूख कहे खा लो तो खा लेना, जब भूख कहे नहीं, तो उठ जाना, तब वह भूख मिलेगी जो परमात्मा की है। नहीं तो फिर हमारी कृत्रिम भूखें भी हैं जैसे हम घड़ी को देखकर कहते हैं ठीक दस बज गये, समय हो गया भोजन का। वह हमारी कृत्रिम भूख है। अगर घड़ी किसी ने एक घंटा पीछे कर दी और आपको पता न हो, तो आपको जब दस बजेंगे तभी भूख लग जायगी। हालांकि अभी ९ बजे होंगे या ११ बजे होंगे। यह जो घड़ी देखकर भूख चलती है वह हमारी कृत्रिम भूख है। तो बुद्ध को नींद आगयी और सो गये। आज उन्होंने सब छोड़ दिया। सब जो उन्होंने किया था, सब छोड़

दिया। आज उन्होंने तय कर लिया कि अब कुछ करूंगा नहीं, ६ साल बहुत कर लिया। उन्हें पता भी नहीं था कि जो करने से नहीं हुआ वही नहीं करने से हो गया। उस रात वे सो गये जब नींद आयी। सुबह पांच बजे के करीब नींद खुली, आंख खुली, आखिरी तारे डूबने के करीब थे आकाश में। वे उसी वृक्ष के नीचे पड़े रहे और उन डूबते हुए तारों को देखते रहे। एक एक तारा डूबता गया, सन्नाटा सुबह का, रात की गहरी नींद। सब करने का ख्याल छोड़ दिया, कुछ करने को न बचा। राज– पाट था वह तो छोड़ चुके थे ६ साल पहले, वह सब धन, यश जो कुछ था ६ साल पहले छोड़ दिये, फिर नयी दौड़ पकड़ ली थी मोक्ष की, निर्वाण की। आज वह भी छोड़ दी। अब करने को कुछ भी नहीं था, बिल्कुल अनअकुपाइड, जिसको कहना चाहिए बिल्कुल बेकार। यह जो बेकार है वह बेकार नहीं है, कुछ न कुछ करना है। बुद्ध अब बिल्कुल बेकार थे, अब्सलूट अन एमप्लायड, पूर्ण बेकार जिसको कहना चाहिए। न कोई राज्य था, न कोई यश था, न कोई धन था, न कोई मोक्ष था, न कोई परमात्मा था, न कोई आत्मा थी। कुछ पाना न था। खाली बैठे थे। वह आखिरी तारा डूबा और बुद्ध खड़े हो गये और वह मिल गया जो ६ साल कोशिश करने से नहीं मिला था। और जब लोग पूछने आये कि कैसे मिला? तो बुद्ध ने कहा– यह मत पूछो कैसे मिला। क्योंकि बहुत कोशिश करने से नहीं मिला था। आज कैसे मिला कहना मुश्किल है, क्योंकि मैंने कुछ किया ही नहीं था। आज मैं था ही नहीं, आज तो मैं था ही नहीं, क्योंकि मैं कुछ कर रहा ही नहीं था और हो गया। और तब बुद्ध बाद में कहने लगे– करने से नहीं मिलेगा, न करने से मिलता है।

जब भी मिला है, न करने से मिला है लेकिन बुद्ध को समझने वाले कोशिश करते हैं और कहते हैं क्या क्या किया बुद्ध ने। वह जो ६ साल तक उन्होंने किया वही उनके भिक्षु कर रहे हैं और वह जो आखिरी रात नहीं किया था वह उनकी पकड़ में नहीं आता। क्योंकि न करने का क्या मतलब? वह जो ६ साल किया था वह चल रहा है सारी दुनिया में। उपवास किया था, यह किया था, वह किया था लेकिन वह बात चूक गयी जो हुई थी, जो न करने में हुई थी। वह करने में कभी नहीं हुई थी। चाहे ६ साल करो या चाहे ६ लाख साल करो वह करने में कभी नहीं होती। वह हमेशा न करने में होती है क्योंकि जो भीतर है वह तो है ही। तुम करने में उलझे रहते हो इसलिए दिखायी नहीं देता, जो करने में भी चूक गया, उसे उसके दर्शन हो जाते हैं। इतना यह सरल है, लेकिन कठिन बहुत लगता है क्योंकि हमारी आदत करने की है। इन तीन

दिनों में न करने की तरफ कदम उठाना, करने का ख्याल ही छोड़ देना। कुछ करना ही नहीं, तीन दिनों में जो होता है होने दें। भूख लगे तो खाना खा लेना, नींद आये तो सो जाना। अपनी तरफ से बुलाना भी मत। अपनी तरफ से मौन भी मत पड़ना। जब बोलने का मन हो बोल लेना, जब मौन का मन हो मौन हो जाना। जब मौन का मन हो तो चाहे सारी दुनिया कहे कि बोलो तो मत बोलना और जब बोलने का मन हो तो अगर कोई भी न बोलता हो तो दरख्तों से बोलना। जो हो उसे होने देना। अपने को ऐसे छोड़ देना जैसे सूखा पत्ता हवाओं में अपने को छोड़ देता है। हवाएं पूरब जाती हैं तो पत्ते पूरब चले जाते हैं, हवाएं पश्चिम जाती हैं तो पत्ते पश्चिम चले जाते हैं। हवाएं आकाश में उठा देती हैं तो पत्ता ऊपर उठ जाता है, हवाएं नीचे गिरा देती हैं तो पत्ता नीचे गिर जाता है।

मृत के प्रति सम्मान एक बात है किन्तु उसका शासन बिलकुल दूसरी बात है

ला-ओत्से से किसी ने पूछा—तूने कैसे पाया ? उसने कहा——मैं सूखा पत्ता हो गया। हवाएं जहां ले जाने लगीं हमने कहा चलो। हमने अपनी जिद्द छोड़ दी कि इधर जायेंगे। हवाएं जहां जायेंगी हमने कहा वहीं चलेंगे और जैसे ही हमने छोड़ दी जिद्द, वैसे ही हमने पा लिया। एफर्ट से नहीं एफर्टलेसनेस से। प्रयत्न से नहीं निष्प्रयत्न से, कर्म से नहीं अकर्म से, चेष्टा से नहीं निश्चेष्टा से, दौड़ने से नहीं रुकने से, खोजने से नहीं खड़ा हो जाने से। इन तीन दिनों में धीरे धीरे आखिरी तारे डूबते चले जायेंगे, फिर आखिरी तारा भी डूब जायगा और मौन सन्नाटा रह जायगा। फिर यहां तो हम विधिवत बैठेंगे और विधि भी बड़ी गड़बड़ चीज है। उससे कोई सम्बन्ध नहीं है। यहां तो ठीक वक्त बैठेंगे, मीटिंग होगी, ध्यान करेंगे। वह ध्यान उतने काम का नहीं होगा। अभी रात यहां से जाओ और मन हो जाय तो मत जाना बिस्तर पर, बैठ जाना किसी वृक्ष के नीचे घंटे दो घंटे, रात भर हो तो क्या बिगड़ सकता है।

एक रात सुकरात पकड़ा गया एक पेड़ के नीचे। घर भर के लोग परेशान हो गये थे कि सुकरात कहां है। सब जगह खोजा——मित्रों के घर खोजा, मित्रों के घर में नहीं था। उन्होंने कहा——कि रात भर दिखायी नहीं पड़ा, हम खुद

भी चिन्तित थे कि वह कहाँ है। बाजार में खोजा लेकिन दूकानें बन्द होने के करीब आ गयी थीं। सुकरात कहीं भी नहीं था। फिर तो बहुत घबरा गये, रात भर लोग जागते रहे, सुकरात कहां होगा ? सुबह सुबह किसी ने खबर दी कि वह एक वृक्ष के नीचे खड़ा है और उसकी आंखें ठहर गयी हैं। उसकी पलक झपती नहीं हैं और वह आकाश को देख रहा है। और हमें डर लगता है कि उसको छूना भी है या नहीं। फिर वह उसी हालत में खड़ा है रात भर से। घर के लोग गये उसे देखा लोगों ने और लोग चुपचाप बैठ गये। किसी की हिम्मत न पड़ी कि उसके पास जाकर उसे हिलायें, क्योंकि वह इतना शांत था। अगर बहुत शांत आदमी के पास अशांत आदमी भी जाय तो बैठ जाता है। फिर सुकरात हिला-डुला। सुबह हो गयी, सूरज निकल आया। फिर वह घर की तरफ चल पड़ा, तो लोगों ने चिल्लाकर कहा कि तुम देख ही नहीं रहे हो हम कैसे तुम्हारे पास बैठे रहे। तुम कर क्या रहे थे ? क्या हो गया है ? सुकरात ने कहा—किया तो बहुत, रात न करने की बात हो गयी। किया तो जिन्दगी भर, कल रात न करने की बात हो गयी। कल आकर खड़ा हुआ था झाड़ के नीचे और फिर पता नहीं क्या हुआ, क्योंकि फिर मैंने कुछ नहीं किया। लेकिन जो करने से नहीं हो सका आज रात हो गया। इन तीन दिन के लिए हवा–पानी जैसे, सूखे पत्ते जैसे हो जायें तो यहां शायद बैठने में जो न हुआ है वह हो जाये। क्योंकि यहां नियम से आकर बैठेंगे, वक्त पर बैठेंगे, आप कहीं भी बैठ जायें, सुबह, रात, दोपहर और इस तरह जियें तीन दिन जैसे कोई आदमी पानी में बह रहा हो। ध्यान रहे, तैरना नहीं, पानी में एक आदमी तैरता है, तो तैरने में उसे कुछ करना पड़ता है। उसे पहुंचना है कहीं तो वह तैरकर पहुंचने की कोशिश करता है। एक दूसरा आदमी कूद जाता है और बहता है, तैरता नहीं। वह कहता है, नदी ले जाय जहां हम राजी हैं। हम नहीं हैं, नदी जहां ले जाये। वह बहता है। इन तीन दिनों में बहने की फिक्र रखें। और रोज तो हम जिन्दगी में तैरने की फिक्र करते हैं, तैरते हैं। किसी को दिल्ली की तरफ तैरना है, और वहां तैरता चला जा रहा है। किसी को कहीं और तैरना है, वह वहां तैरता चला जा रहा है। हम जिन्दगी में तैरते हैं। तैरना एक आदत है, तैरना एक काम है। लेकिन बहना ? बहना तिरना नहीं। इन तीन दिनों में बस फ्लोटिंग। एकदम हल्का होकर उड़े जायें। और जिन्दगी में कुछ भी बोझ न हो तो उस दरवाजे पर चूक नहीं पायेंगे जहां अब तक चूक जाते थे।

★

माथेरान साधना शिविर :
द्वितीय उद्‌बोधन

☆

संकलन
श्री निकलंक

सत्य केवल
उन्हीं के
अनुभव में आ सकता है
जो
अतीत से मुक्त हो जाते हैं

अतीत का बोझ

मनुष्य की तरफ देखने पर एक बहुत ही आश्चर्यजनक तथ्य दिखायी पड़ता है। वह यह कि मनुष्य का पूरा व्यक्तित्व एक तनाव, एक खिंचाव, एक बोझ, एक टेंशन है। कौन सा बोझ है मनुष्य के चित्त पर, किस पत्थर के नीचे आदमी दबा है। किरणों की तरफ देखे या वृक्षों के हरे पत्ते की तरफ या आकाश की तरफ आंखें उठाये—कहीं कोई बोझ नहीं है, सब जगह निर्भार है, कहीं कोई तनाव नहीं है। मनुष्य के मन पर एक तनाव है।

सुना है मैंने, एक तेजी से दौड़ती हुई ट्रेन के भीतर एक आदमी बैठा हुआ था। जो भी उस आदमी के करीब से निकलता था हैरानी से उसे देखता था। उसने काम ही ऐसा कर रखा था। वह अपना बिस्तर, अपनी पेटी अपने सिर पर रखे हुए था। कोई भी उससे पूछता कि यह क्या कर रहे हो, मित्र ? वह कुछ स्वयंसेवक किस्म का आदमी था। कुछ आदमी स्वयंसेवक किस्म के होते हैं। यह उन्हें ख्याल होता है कि सब कुछ स्वयं ही कर लेना है। उसने कहा, "मैं अपना बोझ अपने ही सिर पर रखता हूं। मैं गाड़ी पर क्यों कोई बोझ रखूं ?" वह खुद भी गाड़ी पर सवार था अपने सिर पर बोझ रखे हुए। वह बोझ भी गाड़ी पर ही सवार है, लेकिन जिस बोझ को वह नीचे रखकर आराम से बैठ सकता था उस बोझ को वह सिर पर रखे हुए है, इस ख्याल से कि अपनी सेवा खुद ही करनी चाहिए। गाड़ी भाग रही है, वह उसको भी ले जा रही है, बोझ को भी ले जा रही है, लेकिन वह अपने बोझ को सिर पर ही रखे हुए है।

सारा जीवन चल रहा है, सारा जीवन चलता रहा है, सारा जीवन चलता रहेगा, लेकिन हम अपने अपने बोझ को अपने सिर पर रखे हुए बैठे हैं। जिसे

हम नीचे उतार कर रख सकते हैं उसे हमने सिर पर रखा हुआ है। और हम सबको भी वही ख्याल है, जो उस भागती हुई गाड़ी के आदमी को है, कि अपना बोझ अगर मैं नहीं रखूंगा तो कौन रखेगा ? लेकिन वह बोझ प्रत्येक को दिखायी पड़ रहा था क्योंकि वह दिखने वाला बोझ था। और हम जो बोझ लिये हुए हैं वह दिखने वाला बोझ नहीं है। ऐसे बोझ हैं जो दिखायी पड़ते हैं और जो दिखायी पड़ते हैं वे बोझ बहुत खतरनाक नहीं हैं, उन्हें उतार कर बहुत आसानी से नीचे रखा जा सकता है। लेकिन ऐसे बोझ भी हैं जो दिखायी नहीं पड़ते हैं, और हम रखे हुए हैं, और चूंकि वह दिखायी नहीं पड़ते दूसरे को भी और हमें भी, इसलिए जीवन भर हम बोझ बढ़ाते चले जाते हैं, वे कभी कम नहीं होते। बच्चे और बूढ़े में अगर कोई अंतर है तो सिर्फ एक कि बच्चे के ऊपर अभी कोई बोझ नहीं है और बूढ़े जीवन भर का बोझ इकट्ठा रखे हैं। बुढ़ापे का मतलब है इतने बोझ से दब जाना कि जीना असंभव हो जाय। शरीर तो बढ़ा होगा, लेकिन मन अगर निर्भार है तो आत्मा कभी भी बूढ़ी नहीं होती, और आत्मा अगर निर्भार हो तो मरते क्षण भी व्यक्ति वैसा ही बच्चा होता है, वैसा ही सरल, वैसा ही निर्दोष, वैसा ही इनोसेंट, जैसा उस दिन था, जिस दिन पृथ्वी पर आया था।

एक बाजार में बहुत भीड़ थी और जीसस उस बाजार में उस भीड़ के बीच खड़े थे और किसी ने जीसस से पूछा कि तुम स्वर्ग के राज्य की बातें करते हो, कौन होगा अधिकारी उस राज्य को पाने का ? तो जीसस ने उठाया एक छोटे बच्चे को अपने कंधे पर और कहा, "वे जो बच्चे की भांति होंगे।" लेकिन क्या मतलब है बच्चे की भांति होने का ? जीसस ने यह नहीं कहा कि वे जो बच्चे होंगे, जीसस ने कहा—वे जो बच्चे की भांति होंगे। बच्चे की भांति का मतलब यह है कि जो उम्र में आगे चले गये लेकिन बोझ जिन्होंने नहीं लिया। जो भीतर बच्चे की भांति हैं। लेकिन बहुत अनजान बोझ है जो हम लिए बैठे है और इन बोझों को लिए हुए अगर आप सोचते हों कि शांत हो जाएंगे तो असंभव है। उन बोझों को लिये हुए सोचते हों कि ध्यान के द्वार में प्रविष्ट हो जाएंगे तो असंभव है। उन बोझों को किसी ने आपके ऊपर रखा नहीं है। आपको पता ही नहीं है कि आप ही रखकर चले हैं। आज भी रखते चले जा रहे हैं, रोज रखते चले जाएंगे। और बोझ इतने पैदा हो जायंगे कि आप दब जाएंगे, बोझ ही रह जायंगे। अंतः मरते मरते आदमी तो कभी का मर चुका होता हैं, बोझ ही रह जाता है। इन बोझों को थोड़ा समझ लेना जरूरी है।

उस आदमी को जो गाड़ी में बैठकर सिर पर पेटी-बिस्तर लिए हुए है, अगर यह पता चल जाय कि नासमझी कर रहा है, तो क्या उसे सिर पर से पेटी और बिस्तर उतार देने में कोई कठिनाई होगी ? क्या वह यह पूछेगा कि मैं इसे उतारूं ? उसे यह दिख भर जाय कि यह निहायत पागलपन है, फिर वह उतारने में देर नहीं लगायेगा, उतारकर नीचे रख देगा। चित्त के बोझ हमारी समझ में आ जायं तो उन्हें उतारकर हमें नीचे रख देने में जरा भी कठिनाई नहीं होगी। लेकिन हमें पता ही नहीं कि हम किस तरह के बोझ लिये हुए हैं। उन बोझों की थोड़ी सी झलक हमारे ख्याल में आनी चाहिए।

पहिली बात— जो बीत गया उसे हम इकट्ठा किये हुए हैं। वह बीत चुका है, अब कहीं भी नहीं है। सिर्फ हमारी स्मृति को छोड़कर वह सब बह चुका है। अब वह कहीं खोजे से नहीं मिलेगा, लेकिन हमारी स्मृति में संग्रहीत है। वह सारा का सारा पत्थर की तरह हमारे सिर पर बैठा हुआ है। कल हुआ था कुछ, वह हो चुका। जैसे पानी में पड़ी हुई रेखाएं बनती ही नहीं और मिट जाती

जिन्दगी के समस्त कार्यों के साथ ध्यान और होश पूर्वक रहने की चेष्टा परमात्मा की दिशा में गति है

हैं, बन भी नहीं पातीं और मिट जाती हैं, वैसे ही इस जीवन की सतह पर बनी हुई रेखाएं बन भी नहीं पाती हैं और मिट जाती हैं। इन वृक्षों को कुछ भी पता नहीं कि कल यह हुआ था, न आकाश को कुछ पता है, न सूरज को कुछ पता है, सिर्फ आदमी को छोड़कर। आदमी जो कल हुआ था उसको जकड़ कर बैठ गया है, उसे उसने पकड़ लिया है। कल किसी ने गाली दी और कल किसी ने प्रेम किया, कल किसी ने सम्मान किया था और कल किसी ने अपमान किया था और भीतर ये सारे कल अंतहीन हैं। और हमें तो याद है सारे जन्मों की और इस जन्म की। जो जानते हैं वे कहेंगे अंतहीन जन्मों की कथाएं स्मरण में भीतर बैठी हैं। उन सबका बोझ है, एक आदमी पर, अनंत जन्मों का बोझ है, अतीत का बोझ है। अतीत पत्थर बनता चला गया है, हमारी छाती पर। वह हमारे सिर पर है, उसके नीचे हम दबे हैं इसलिए निर्भार नहीं हो पाते। यह समझ लेना जरूरी है कि जो बीत गया वह बीत गया, अब वह कहीं भी नहीं है, अब

उसे मैं क्यों ढो रहा हूं।

एक सुबह एक आदमी बुद्ध के ऊपर बहुत क्रोधित हुआ था, बहुत गलियां दी थीं। फिर बुद्ध के ऊपर क्रोध में उसने थूक दिया था। बुद्ध ने चादर से उस थूक को पोंछ लिया और उस व्यक्ति से कहा—और कुछ कहना है। सोचें थोड़ा, उस सुबह आप गये हों बुद्ध के पास थूकने को। बुद्ध जैसे लोगों के ऊपर थूकने का बहुत लोगों का मन होता है, क्योंकि बुद्ध जैसे लोग बहुत लोगों के लिए अपमानजनक सिद्ध होते हैं। बुद्ध तो किसी का अपमान नहीं करते हैं, लेकिन उनका होना ही बहुत से लोगों के लिए पीड़ा और अपमान का कारण हो जाता है, क्योंकि बुद्ध जैसे व्यक्ति का खड़ा होना ही हमारे अंधकार को दिखाने लगता है। बुद्ध जैसे व्यक्ति के भीतर से बहती करुणा हमारे भीतर के क्रोध और अहंकार को बहुत घबराने लगती है। बुद्ध का व्यक्तित्व हमारे व्यक्तित्व की भूमिका को जाहिर करने लगता है। हम क्रोधित हो जाते हैं तो बुद्ध पर थूकने का मन होता है। बिल्कुल स्वाभाविक है। कोई आदमी गया है और बुद्ध पर जाकर उसने थूक दिया है। समझ लें कि आप ही गये हैं और बुद्ध ने थूक को पोंछ लिया है जैसे कुछ भी न हुआ हो और क्या हो गया है, और बुद्ध ने पूछा है—"और कुछ कहना है ?" पास बैठा हुआ भिक्षु आनंद बहुत क्रोधित हो उठा और कहने लगा—आप क्या कहते हैं 'कुछ कहना है'। उस आदमी ने थूका है और हम आपकी वजह से सिर्फ चुप हैं अन्यथा हमारे प्राणों में आग लग गयी है कि यह क्या किया है इस आदमी ने ! आप पर वह थूकता है और आप यह कह रहे है कि और कुछ कहना है। बुद्ध ने कहा—जहां तक मैं समझता हूं इस आदमी के मन में इतना क्रोध है कि शब्दों से कहने में असमर्थ है, इसलिए थूक कर कहता है। थूकना भी एक भाषा है, एक ढंग है, एक विधि है। और कभी जब हम न कह पाते हों कुछ शब्द, असमर्थ हो जाते हों तो फिर इस तरह से कहते हैं। किसी का प्रेम बहुत बढ़ जाता है तो गले से लगा लेता है। अब गले से लगा लेना कोई मतलब नहीं, लेकिन प्रेम के लिए शब्द नहीं मिलते। और कोई क्रोध से भर जाता है तो सिर्फ चोट कर देता है, शब्द नहीं मिलते। और कोई आदर से भर जाता है तो पैरों पर सिर रख देता है, शब्द नहीं मिलते। बुद्ध ने कहा, शब्द नहीं खोज पा रहा है वह आदमी। भाषा कमजोर है इसलिए कुछ नहीं कह पाता। मैं समझा, और कुछ कहना है, मित्र ? आप होते उस जगह, क्या कहने को बच गया था। वह आदमी वापस लौट गया है, उसकी आंखों में आंसू भरे हैं, रात भर वह सो नहीं सका। दूसरे दिन क्षमा मांगने

आया है और बुद्ध से कहने लगा पैरों को पकड़ कर, आंसू गिरा कर, मुझे क्षमा कर दें। बुद्ध ने कहा—देखते हो, आनंद, अब भी यह आदमी कुछ कहना चाह रहा है और शब्द नहीं मिल रहे हैं तो आंखों से आंसू गिरा कर पैर पकड़ लेता है। आदमी की भाषा, आनंद, बहुत कमजोर है और उस आदमी से कहा—मित्र, किस बात की क्षमा मांगते हो ? उस कल की, जो जा चुका ? किससे क्षमा मांगते हो—मुझसे ? मैं दूसरा आदमी हूं, बह गयी गंगा में बहुत धारा, बहुत पानी बह गया। कल तुम सुबह जिस गंगा के पास गये थे अब वही गंगा वहां नहीं है। आज तुम जाओ और क्षमा मांगो तो गंगा कहेगी, किससे मांगते हो क्षमा ? बह गया पानी, वह जिससे तुम कल मिल गये थे। अब वह कहां हूं मैं, जो कल था। न वृक्षों में पत्ते वही हैं, न आकाश में बादल वही हैं, न सूरज की किरणें वही हैं। कोई भी तो वही नहीं है, सब तो बह गया, सब तो बदल गया। किससे क्षमा मांगते हो ? लेकिन पागल हो, कल तुम नहीं बह पाये, तुम वहीं अटके रुके हो। कल सुबह थूक जो गये थे वहीं खड़े हो। बुद्ध ने कहा—मैं कैसे क्षमा करूं, मैं तो कल नहीं था। जो था वह आज मैं नहीं हूं। सिर्फ मरी हुई चीजें वही होती हैं जो कल थीं। जिन्दा चीजें रोज बदल जाती हैं।

जीवन का मतलब है बदल जाना, मरे हुए का मतलब है न बदलना। सुबह फूल खिलता है उसी के नीचे एक पत्थर पड़ा है। वह पत्थर मन में हंसता होगा उन लोगों को देखकर जो फूल की प्रशंसा करते हैं; क्योंकि वह कहता होगा कि पागल हो गये हो, अभी खिल भी नहीं पाया है, दोपहर मुरझा जायगा, गिर जायगा, मुझे देखो, मैं सुबह भी वही हूं, दोपहर भी वही हूं, सांझ भी वही हूं। सिर्फ जो मरा हुआ है वह वही होता है जो था। असल में मरा हुआ अतीत में होता है, मरे हुए का कोई वर्तमान नहीं होता। अतीत का मतलब होता है मरा हुआ। मरे हुए का मतलब है दी पास्ट, बीत गया। सिर्फ अतीत नहीं बदलता है, वर्तमान प्रतिक्षण बदलता चला जाता है। जो बदलता है उसका नाम वर्तमान है। जो ठहरता नहीं, जो बदलता ही चला जाता है उसी का नाम जीवन है। लेकिन स्मृति बदलती नहीं, ठहर जाती है। हम जीवन हैं और हमारे सिर पर बोझ है जो नहीं बदलते। हम तो फूल की तरह हैं और स्मृति पत्थर की तरह है, जैसे एक फूल को पत्थर के नीचे दबा दिया हो। उससे आदमी विकृत हो जाता है। आदमी तो फूल है, जिन्दगी तो फूल है। स्मृति पत्थर की तरह उस फूल को दबाये हुए है। सोचो, एक फूल पत्थर के नीचे दबा हो तो कैसे प्राण हो

जायेंगे ? वैसे आदमी की चेतना स्मृति के पत्थर के नीचे दब गयी है। और हम परेशान, पीड़ित और तनाव से भरे जा रहे हैं।

ध्यान में प्रवेश होता है उनका, जो स्मृति के पत्थर को हटा देते हैं। लेकिन हम तो उसे सम्हालते हैं। हम तो कहते हैं, पता है कि मैं कल कौन था ? आदमी कभी एम. एल. ए. रहा हो तो भी अपने पैड पर लिखे रहता है भूतपूर्व एम. एल. ए.। वह जो 'एक्स' है वह पीछा नहीं छोड़ रहा है। गंगा का पानी बह गया, जो था वह अब नहीं है। आप यहां आये थे सुबह, वहीं वापस नहीं लौटेंगे, घंटे भर में सब बह जायगा। जैसे सांझ कोई एक दिया जलाये और सुबह जाकर कहे कि अब मैं उसी दिये को बुझाता हूं जिसे सांझ जलाया था। तो गलत कहता है कि सही कहता है ? हमें लगेगा सही कहता है, वही दिया बुझाता है जो सांझ जलाया था, लेकिन कहां है वह दिया, जो सांझ जलाया था। वह ज्योति जो प्रतिक्षण बदलती चली गयी, वह ज्योति तो धुआं होती चली गयी, नयी ज्योति आती चली गयी। रात भर दिया बदला, रात भर दिया बदलता रहा, रात भर धारा ज्योति की बहती रही, नयी ज्योति, नयी ज्योति, आती चली गयी। इतनी तेजी से हुआ यह परिवर्तन, पुरानी ज्योति गयी नहीं कि नयी आ गयी कि बीच का फासला हमें दिखा नहीं। हमने समझा कि वही जल रही है, वही जल रही है। सांझ जो दिया जलाया, सुबह कोई वही बुझा सकता है ? सांझ जो दिया जलाया वह तो सांझ ही बुझ गया और बह गया। दूसरे दिये जलते चले गये। एक श्रृंखला थी परिवर्तन की। सुबह जिस दिये को बुझाते हैं वह बिल्कुल और है। जिसे कभी नहीं जलाया था उसे बुझाते हैं। श्रृंखला है, तेज धारा है इसलिए पता नहीं चलता। जो आदमी पैदा होता है क्या वही मरता है ? आप जो पैदा हुए थे क्या वही हैं ? वही रहेंगें ? ज्योति बदलती चली गयी, सब बदलता चला गया। एक बहाव है जिन्दगी, लेकिन उस बहाव ने जो भी जाना उस बहाव में जो भी अंकुरित हुआ, उस बहाव ने जो कुछ देखा वह सब स्मृति इकट्ठी करती चली गयी। जीवन की धारा है आगे की तरफ, स्मृति की पकड़ है पीछे की तरफ। स्मृति रुक जाती है अतीत पर, जीवन भागता है आगे आगे, अनजान, अज्ञान में। और स्मृति ? स्मृति रुकती है ज्ञात पर। स्मृति है नोन, वह जो ज्ञात है। और जीवन है अननोन वह जो अज्ञात है और ज्ञात और अज्ञात के बीच जो खिंचाव है वह मनुष्य का तनाव है, वह टैंशन है। वह तनाव जबतक न उतरे तबतक जीवन के द्वार में हम प्रवेश नहीं पा सकते। यह मत पूछिये कि वह बोझ कैसे है ? समझ लेना जरूरी है

और समझ लिया जाय ठीक से, तो बोझ उतर जाता है। क्योंकि दिखने वाला बोझ थोड़े ही है जिसे सिर से उतार लें। वह समझने की बात है, वह थोड़ा थोड़ा देख लेने की बात है, अंडरस्टेंडिंग हो, दिखायी पड़ जाय तो बात खत्म हो गयी। आप देखें अपनी तरफ, कितनी स्मृतियों को इकट्ठी किये बैठे हैं, क्या प्रयोजन है उन स्मृतियों का ? क्या अर्थ है उन स्मृतियों का ? मैं यह नहीं कह रहा हूं कि आप यह भूल जायें कि किस होटल के किस कमरे में ठहरे हैं। मैं यह भी नहीं कहा रहा हूं कि आप भूल जायें कि आपको किस गांव वापस लौटना है, यह मैं नहीं कहा रहा हूं। यह कामचलाऊ स्मृति है जिसका कोई बोझ नहीं। स्मृतियां दूसरी हैं, साइक्लोजिकल, मानसिक। अगर कल मैंने आपको गाली दी थी, तो क्या आज आप मुझसे मिल सकेंगे उस गाली को बिना बीच में लिये। क्या यह संभव होगा कि आप मुझसे मिलें और मैं जो कल जैसा आपको दिखायी पड़ा था वह तस्वीर बीच में न आये, वह इमेज बीच में न बने ? अगर यह हो सकता है, तो आप एक जिन्दा आदमी हैं जिसके मन पर बोझ नहीं, और अगर यह नहीं हो सकता तो फिर बहुत कठिनाई है।

तुम्हें अपना स्रष्टा बनना होगा। मनुष्य के निर्माण में वह स्वयं ही पत्थर है और स्वयं ही कारीगर; और स्वयं ही वे उपकरण, जिनसे कि एक पाषाण प्रतिमा में परिवर्तित होता है

अभी एक मित्र मेरे आये और उन्होंने कहा—रात आपकी बातें सुनीं। पर पहले की और इन बातों में थोड़ा विरोध मालूम पड़ा। लेकिन पहले की बातों को किस लिए पकड़कर बैठे हैं। वह सब बह गया और अगर पहले की बातों को पकड़कर बैठे हैं तो जो मैं अभी कह रहा हूं वह न आप सुन पायेंगे, न आप समझ पायेंगे। फिर विरोध दिखायी पड़ेगा क्योंकि आप सुन ही नहीं पाये, समझ ही नहीं पाये और जो मैं कहता हूं।, जो मैं कह रहा हूं उसे यदि ठीक से समझ लें तो कभी कोई विरोध नहीं दिखायी पड़ेगा, लेकिन वह पीछे का पकड़े हुए हैं, कि कभी यह कहा था। न उसको सुना होगा कभी, क्योंकि तब पीछे का और कुछ पकड़े रहे होंगे। मेरा नहीं तो कृष्ण का, बुद्ध का, महावीर का, गीता का, कुरान का पकड़े रहे होंगे। पीछे की तरफ स्मृति भागती रहती है

और जीवन आगे की तरफ भागता रहता है। इन दोनों में मेल नहीं हो पाता है। जैसे एक ही बैलगाड़ी में हमने दोनों तरफ बैल जोत दिये हों और दोनों तरफ बैलगाड़ी चली जा रही हो। स्मृति के बैल पीछे की तरफ, जीवन धारा के बैल आगे की तरफ। और वह बैलगाड़ी तकलीफ में पड़ गयी, पूरे वक्त मुश्किल में। और पीछे के बैल मजबूत हैं, क्योंकि जीवन भर का बल उन्हें मिला है। वह जो अतीत के बैल हैं, स्मृति के बैल हैं, मजबूत हैं क्योंकि जीवन भर की ताकत उन्हें मिली है। मुर्दा है लेकिन मजबूत है, पत्थर है लेकिन वजनी है। आगे की जीवन की धारा बहुत कोमल है। अभी होने को है। जैसे छोटा सा अंकुर निकलता है बीज से कमजोर, कोमल, डेलीकेट। अभी जरा सा पत्थर उस पर रख दें तो मर जायेगा। इसीलिए भविष्य की जीवन धारा बहुत डेलीकेट है, कोमल, बहुत नाजुक और अतीत के बैल बहुत मजबूत हैं। वह पीछे की तरफ गाड़ी को खींचते रहते हैं। गाड़ी पीछे जा नहीं सकती सिर्फ आप खींच सकते हैं। और तब जिन्दगी रुक जाती है, ठहर जाती है। धारा नहीं रह जाती है, एक बांध बन जाती है, एक सरोवर बन जाती है। फिर हम सड़ते हैं, बोझ से मरते हैं। इसलिए आदमी की आंख में वह बात नहीं दिखायी पड़ती जो एक झील में दिखायी पड़ती है, आदमी की आंख में वह बात भी नहीं दिखायी पड़ती है जो एक गाय की आंख में दिखायी पड़ जाय, आदमी की गति में वह बात दिखायी नहीं पड़ती जो एक हिरन की गति में दिखायी पड़ती है। आदमी की जिन्दगी में वैसी फ्लावरिंग दिखायी नहीं पड़ती, वैसी चीजें खिलती दिखायी नहीं पड़तीं जैसी पौधों में दिखायी पडती हैं। और आदमी भी इस प्रकृति का उतना ही हिस्सा है जितना पशु है, जितने पौधे हैं, जितने पक्षी हैं, जितने चांद-तारे हैं। लेकिन आदमी में तोड़ने वाली कौन सी बात है ? वह अतीत का बोझ एक भारी दीवाल की तरह खड़ा होकर आज हमको जीवन से तोड़ रहा है। यह बात समझ लेना जरूरी है कि जो हो चुका, हो चुका है। उसे मैं क्यों ढो रहा हूं, उसे विदा कर दें।

एक फकीर खोजता हुआ निकला था, सत्य की खोज में। फिर वह एक संन्यासी के आश्रम में रुका। वह संन्यासी से मिला और उसको कहा कि मैं सत्य की खोज में आया हूं। जानना चाहता हूं कि जीवन का सत्य क्या है ? जिस संन्यासी को उसने यह पूछा उस संन्यासी ने कहा, ये बातें पीछे हो जायेंगी। कहां से आते हो ? उस आदमी ने कहा मैं पेकिंग से आता हूं। उस संन्यासी ने कहा, पेकिंग में चावल के क्या दाम चल रहे हैं ? वह जो फकीर था कहने लगा—महाशय,

पेकिंग में जरूर चावल के कुछ दाम चल रहे होंगे लेकिन मैं पेकिंग छोड़ चुका हूं और जहां मैं छोड़ चुका हूं वहां लौटकर नहीं देखता हूं। जिन रास्तों से मैं गुजर जाता हूं उन्हें भूल जाता हूं, क्योंकि मुझे और आगे के रास्ते पार करने हैं। और अगर आंखें पिछले रास्तों से भरी रहें तो आगे के रास्ते सिर्फ धुंधले दिखायी पड़ते हैं। आंखें एक समय में एक ही बात देख सकती हैं—या तो पीछे के रास्ते या आगे के रास्ते। होंगे पेकिंग में कुछ भाव लेकिन मैं पेकिंग में नहीं हूं। वह संन्यासी हंसा, उसने कहा—मैंने जानकर पूछा, अगर तुम पेकिंग के चावल के भाव बता देते तो मैं सत्य की तुमसे बात नहीं करता। ठीक है, तब तुमसे कुछ बातें हो सकती हैं क्योंकि सत्य केवल उन्हीं के अनुभव में आ सकता है जो अतीत से मुक्त हो जाते हैं। लेकिन हमें तो पेकिंग के चावल के भाव बहुत अच्छी तरह याद हैं। आदमी बचपन की बताता है कि इतने सेर बिकता था, इतना घी मिलता था, इतना यह होता था। यह सिर्फ बताता नहीं है, यह इसके चित्त पर बोझ की तरह बैठा है, तो जिन्दगी जो आज है उसे देखने में बाधा पड़ती है; क्योंकि जिन्दगी जो कल थी उसे इतने जोर से मन ने पकड़ लिया है। कभी आपने ख्याल किया है, मन दो तरह से काम करता है—एक तो फोटो—प्लेट की तरह। कैमरे में हम फोटो—प्लेट लगा देते हैं, बहुत सेंसटिव, बहुत संवेदनशील होती है, लेकिन बस एक फोटो निकाल कर व्यर्थ हो जाती है। एक फोटो पकड़ लिया, फोटो—प्लेट खराब हो गयी, फिर अब दूसरी फोटो नहीं पकड़ी जा सकती उस पर, मर गयी, जिन्दा न रही अब। एक दर्पण भी होता है, दर्पण पर रोज तसवीर बनती है। जब सामने कोई होता है तो दर्पण उसकी पूरी तसवीर बना देता है। फिर जब वह विदा हो जाता है तो तसवीर भी बिदा हो जाती है। दर्पण फिर खाली हो जाता है। फिर कोई दूसरा सामने आता है। उसमें फिर तसवीर बनती है। दर्पण यह नहीं कहता कि मैं बना चुका यह तसवीर। अब मैं दूसरी नहीं बनाऊंगा। दर्पण तसवीर पकड़ता नहीं है। दर्पण मरता नहीं है। तसवीर पकड़कर दर्पण जिंदा बनता है। तसवीर आती है, जाती है, बीत जाती है। जो लोग स्मृति में जीने लगते हैं वे लोग अपने चित्त का फोटो-प्लेट की तरह उपयोग कर रहे हैं, जहां एक के ऊपर दूसरी तसवीर इकट्ठी होती चली गयी। वहां विदा नहीं होतीं तसवीरें। खाली नहीं होते दर्पण। फिर तसवीरों पर तसवीरें बैठती चली जाती हैं। बोझ बढ़ता चला जाता है। लेकिन जो लोग ध्यान की दुनिया में गति करना चाहते हैं, उन्हें मन मिरर लाइक दर्पण की तरह उपयोग करना हैं। मन पर आती हैं चीजें, जाती हैं, आप उसे देखते हैं तो ठीक है।

आप नहीं देखते तो गये। फिर आप कहीं भी नहीं हैं। जिस स्टेशन पर सवार होते हैं, लोगों को नमस्कार करतें हैं फिर वे गये, फिर वह स्टेशन गया। वह दुनिया में है भी नहीं, उससे कोई मतलब नहीं रहा, फिर आगे और दुनिया है, आगे और लोग हैं, उनकी तसवीर बना ली है। तो पिछली तसवीरों में विदा हो जाना चाहिए, अन्यथा फिर नये के साथ न्याय नहीं हो सकता है। पुराने के साथ जो बहुत ज्यादा पकड़ हो, तो नये के साथ न्याय नहीं हो सकता। अतीत के साथ बहुत पकड़ हो, तो वर्तमान के साथ न्याय कैसे हो सकता है? और बीते कल से जो बन गया, वह आज में जियेगा कैसे? अभी कैसे जियेगा? इस क्षण कैसे जियेगा? यह क्षण तो कभी भी नहीं था। यह पहली बार आया है और हमारे मन भरे हैं तसवीरों से। अतीत का बोझ हमारे चित्त को, चित्त के दर्पण को धूमिल कर देता है।

एक व्यक्ति एक संन्यासी के आश्रम में दीक्षित हुआ। बरसों तक साधना की, लेकिन नहीं पा सका वह जो पाने की इच्छा थी। फिर उसने अपने गुरु को कहा, वर्ष पर वर्ष बीत गये, वह तो नहीं मिला जिसे खोजने आया था। अब मैं कहां जाऊं? तो उसके गुरु ने कहा कि एक सराय है नगर के बाहर, कुछ दिन वहां जाकर रह। सराय का वह जो मालिक है, वह जो रखवाला है, उसे ठीक से समझ, शायद जो यहां नहीं मिल सका, वह वहां मिल जाय। वह युवा संन्यासी उस सराय में गया। आशा तो नहीं थी क्योंकि एक बड़े संन्यासी से कुछ न मिला तो एक सराय के रखवाले से क्या मिलेगा? लेकिन कहा था गुरु ने तो चला गया। सांझ जाकर जब वहां पहुंचा तो सराय का मालिक बरतन साफ कर रहा था। दिन भर जो लोगों ने किया था, यहां ठहरे और गये थे उनके उसने बरतन साफ किये, कमरों में बुहारी लगायी, द्वार झाड़े। युवा संन्यासी देखता रहा। फिर उसने कहा, मेरे गुरु ने आपके पास कुछ सीखने को भेजा है। वह पहरेदार, वह सराय का रखवाला कहने लगा, मेरे पास सीखने को क्या है? लेकिन आये हो, तो ठहरो। मैं कुछ सिखा नहीं सकता। तुम खुद सीख सकोगे, यह बात दूसरी है। और दुनिया में कोई किसी को कुछ नहीं सिखा सकता। कोई सीख सके, तो बात दूसरी है। लेकिन उसने कहा, जो आदमी कहता है, मेरे को सिखा नहीं सकता, उससे सीखने को क्या मिलेगा? लेकिन फिर आ गया हूं तो कम से कम रात रुक जाऊं और कम से कम एक दिन तो देख लूं कि यह आदमी क्या करता है। दूसरे दिन सुबह से फिर वह देखता रहा। वह आदमी दिन भर लोगों की सेवाएं करता रहा। एक मेहमान आया, दूसरा मेहमान गया। तीसरा मेहमान आया – किसी के घोड़े

बंधे, किसी के ऊंट ठहरे, किसी की गाड़ी बंधी। वह दिन भर काम करता रहा। भोजन देता रहा। सांझ फिर बरतन मलता था। फिर उसने कहा, अब मैं जाऊं ? क्यों कि मुझे कुछ सीखने जैसा नहीं दिखायी पड़ता। दिन भर लोग आये-गये, मैंने देखा। तुमने सेवा की वह मैंने देखा। तुमने बरतन धोये, तुमने मकान साफ किया, वह मैंने देखा। सब मैंने देख लिया। सिर्फ मुझे पता नहीं कि तुम सुबह कब उठे, उस वक्त तुमने क्या किया, वह तो मुझे और बता दो। उसने कहा कुछ नहीं किया। रात जिन बरतनों को साफ करके रख दिया था, उनपर थोड़ी धूल जम गयी थी, सुबह फिर उन्हें साफ किया। उस आदमी ने कहा, अच्छा पागल है मेरा गुरु। किस आदमी के पास भेज दिया, जहां सीखने को कुछ भी नहीं है– जो बरतन साफ करना, मकान साफ करना, लोगों की सेवा करना, इसके सिवा कुछ भी नहीं जानता। वह वापस लौट गया अपने गुरू के पास और कहा, कहां मुझे भेज दिया। वहां मैंने कुछ भी नहीं पाया। तो उसके गुरु ने कहा, अब तुम कहीं भी कुछ नहीं पा सकोगे। क्योंकि वह पानेवाला चित्त ही तुम्हारे पास नहीं है। मैंने तुम्हें जहां भेजा था, जानकर भेजा था। क्योंकि मुझे वहीं मिला था। एक रात मैं भी उस सराय में ठहरा था। मैंने भी उस आदमी को देखा, कि एक मेहमान के साथ उसने वही व्यवहार किया, जो दूसरे मेहमान के साथ। मैंने देखा कि जब एक आदमी आया तो जैसे वही आदमी दुनिया में उसके लिए सब कुछ हो गया। जैसे दुनिया मिट गयी, वही आदमी सब कुछ हो गया। वह उसकी इस तरह सेवा करने लगा जैसे जीवन भर उसी की सेवा करता रहा हो। फिर वह आदमी चला गया, तो उसको लौटकर भी रास्ते पर नहीं देखा। दूसरा आ गया था, उसकी सेवा करने लगा। मैंने देखा कि वह आदमी दर्पण की तरह है। उसके चित्त पर कोई तसवीर नहीं बनती। हजारों मेहमान आये और गये। वह सराय है, वहां कोई आता है, जाता है लेकिन सराय का वह जो मालिक है, वह अद्‌भुत है। वह किसी को पकड़ नहीं लेता। कुछ पकड़ता नहीं, कुछ जकड़ता नहीं। जब कोई सामने होता है, तो ऐसे लगता है जैसे इसका बड़ा प्रेम है। जीवन भर इसी को पकड़े बैठा रहेगा। जब कोई चला जाता है, तो वह लौटकर भी नहीं देखता। वे जो उसे छोड़कर जाते हैं, वे लौट लौटकर देखते हैं, उस सराय के मालिक को। तूने देखा नहीं, वह दर्पण जैसा आदमी है। तूने उससे कुछ पूछा नहीं ? उसने कहा– मैंने पूछा था कि सुबह उठकर तुमने क्या किया क्योंकि बाकी तो सब मैंने देख लिया था। सुबह का मुझे पता नहीं था। तो सिर्फ इतना ही कहा कि मैंने रात जो बरतन रख दिये थे साफ करके उनपर थोड़ी धूल जम गयी थी, उन्हें सुबह

फिर साफ कर दिया। वह फकीर, वह गुरु हंसने लगा। उसने कहा, पागल, उसने ठीक कहा, रात भी चित्त पर सपनों की धूल जम जाती है, रात भर सपने चलते हैं। सांझ साफ करके सो जाओ तो सपने चलते हैं। उनकी भी धूल जम जाती है। सुबह उसको भी साफ कर लिया है। यही उसने कहा है। चित्त एक दर्पण है। और चित्त एक दर्पण हो जाय, तो बस हो गया सब। लेकिन चित्त पर जो हम धूल इकट्ठी करते हैं, इस धूल को समझ लेना जरूरी है और यह उतर जाती है। अतीत का बोझ है तो अतीत को जाने दें। क्या प्रयोजन है, उसे बांधकर रखने का? क्या अर्थ है, कौन-सी सार्थकता है उसके साथ बंधे रह जाने में।

एक मित्र हैं, उनके घर मैं ठहरा था आज से कोई सात साल पहले। किसी युवती से प्रेम था, उसे विवाह कर लाये थे। उनसे मेरी बात हो रही है। मैंने उनसे अचानक पूछा कि आज तुम्हारी पत्नी कौन-सी साड़ी पहने हुए है, बता सकोगे? वे कहने लगे, कौन-सी साड़ी पहने है, ख्याल नहीं किया। दिन भर पत्नी घर में है। दिन भर उन्होंने देखा है, लेकिन वह कौन-सी साड़ी पहने है, वह ख्याल में नहीं है। पड़ोस की पत्नी कौन-सी पहने हुए है, यह ख्याल में हो सकता है। पर अपनी पत्नी को देखने की जरूरत नहीं रह गयी। उसको एक दफा देख लिया था, वह भी सात साल पहले। तब से वही तसवीर काम कर रही है। सात साल में वह स्त्री रोज बदलती चली गयी। रोज नयी होती चली गयी, लेकिन फिर उसे नहीं देखा गया। माइंड जो है, फोटो-प्लेट की तरह काम कर रहा है। मैंने उनसे पूछा, क्या तुम यह बता सकते हो कि जब तुमने पहली दफा इस लड़की को देखा था, तब यह कौन सी साड़ी पहले हुई थी। वे कहने लगे, यह तो तसवीर बिलकुल जिंदा। वह मैं बता सकता हूं, उसने क्या क्या पहन रखा था पहली बार, मैंने जब देखा था। लेकिन वह सात साल पहले की बात है, वह सात साल पहले की तसवीर बिलकुल जिंदा है और जब मैंने उन्हें याद दिलाया, तो उनके चेहरे की रोशनी बदल गयी। वे कुछ सोच में पड़े गये और ख्याल में पड़ गये और कहने लगे, उसने यह यह कपड़े पहन रखे थे। उसकी चप्पल भी बता सकते थे, वे उसने कान में क्या पहन रखा था वह भी बता सकते थे। लेकिन आज वह क्या पहने हुए है, उसका उन्हें कोई भी पता नहीं है। आपको भी पता नहीं होगा क्योंकि आज तो आपने देखा ही नहीं है। देख लिया था एक दफे, वह तसवीर बैठ गयी है। उसी से रोज काम चला लेते हैं। और वह भी रोज रोज झंझट होती है। रोज जो झंझट है, वह इस बात की है कि पत्नी भी बदल गयी, पति भी बदल गया। लेकिन पत्नी तो समझ रही है कि

सात साल पहले जो आदमी मिला था, वह वैसा ही होना चाहिए। पत्नी को पति भी सात साल पहले की तसवीर समझ रहा है। वही सात साल पहले की मांग चल रही है। रोज कलह है, क्योंकि रोज कोई किसी को नहीं देख रहा है। बदलाहट हो रही है, सब कुछ बदल गया, धारा बह गयी। गंगा में बहुत-सा पानी बह गया, मांग जारी है। पत्नी यह कह रही है कि पहले दिन तुमने जिस भांति मुझे प्रेम किया था, वह तुम आज क्यों नहीं करते? वह तसवीर जिंदा है और उसी में तौल चल रही है। आदमी जा चुका। अब बिलकुल दूसरा आदमी है, यह वही आदमी नहीं है। लेकिन दोनों ठहरे हैं अपनी पुरानी स्मृतियों पर। हम सब वहीं ठहरे हुए हैं। बेटा जवान हो जाता है। बाप को कभी पता नहीं चलता कि बेटा जवान हो गया है। वह वहीं ठहरा हुआ है जब बेटा छोटा था। वह उसके साथ वही बातें किये चले जा रहा है, जो बचपन में की थीं। उसको मारने को भी तैयार है। बेटे की समझ के बाहर है यह सब क्योंकि बेटे को लगता है कि वह अब जवान हो गया है। बाप को नहीं लगता है जवान है। उसे वह बेटा ही है। चीजें बढ़ गयी हैं, बदल गयी हैं लेकिन बाप पुरानी तसवीर पर रुका हुआ है। सब पीछे रुका हुआ है। सब चीजें बदल जाती हैं, सब चीजें पीछे रुकी मालूम होती हैं। मां है, उसका बेटा नयी शादी कर लाया है, उसको पता नहीं है कि लड़का जवान हो गया है। वह उस स्त्री के प्रेम में गिरेगा। पर मां अपनी पुरानी ही मांग जारी किये हुए है। वह समझती है, बेटा अभी आये, उसकी गोद में सिर रखे। अब भी आये, उससे गले मिल ले। उसकी समझ के बाहर है कि वह किसी और स्त्री की गोद में सिर रखे। किसी और स्त्री को गले लगाये। यह उसकी समझ के बिलकुल बाहर है। इसलिए सास और बहू की नहीं बन पा रही है। मां रुकी हुई है अपने बेटे के साथ जब वह छोटा था। वह अब भी चाहती है कि वह जो आज्ञा दे वही वह करे। जहां वह कहे, बेटा वहीं बैठे। वह कहे—जाओ, वह जाये। जहां वह रोके, वहां रुके। उसे पता नहीं कि बेटा बड़ा हो गया है। गंगा का पानी बहुत बह गया। अब दूसरा आदमी है वहां। वही नहीं जो उसकी गोद में लेटा था। वही नहीं, जो उसके पेट में रहा था। वह अब भी वही बातें कर रही है, कि मैंने तो तुझे नौ महीने पेट में रखा था। माता से पूछो वह अब भी कहेगी कि हमने तुम्हें नौ महीने पेट में रखा था। हमने इतने कष्ट सहे और तुम हमारे साथ यह कर रहे हो! उसे पता नहीं कि जिसको उसने पेट में रखा था वह कोई और था। यह था ही नहीं कभी। यह बिलकुल नया है। यह बिलकुल दूसरा है। जिंदगी की धारा, जिंदगी की ज्योति

कहीं और से आयी है। यह वह दिया नहीं है, जो उसने पेट में जलाया था। वह ज्योति बदलती चली गयी, बदलती चली गयी। बिलकुल दूसरा आदमी है। लेकिन हम तो नये को नहीं देख पाते। वह पुराना ही हमारे चित्त को पकड़े हुए है।

दुनिया का एक ही कष्ट है। सबकी एक ही उलझन है चाहे वह पति की हो, चाहे पत्नी की, चाहे मां की, चाहे बेटे की, चाहे मित्रों की। जिंदगी का एक ही उलझाव है कि हम सब पीछे रुक जाते हैं। आगे हम जाते ही नहीं। कोई कहीं रुक जाता है, कोई कहीं रुक जाता है। हम वहां नहीं हैं, जहां हम हैं। हम बहुत पहले कहीं रुक गये हैं और जहां हम रुक गये हैं, वहीं कठिनाई शुरू हो गयी है। हमें होना चाहिए वहां जहां हम हैं। फिर ध्यान में बाधा नहीं होती। हमें होना चाहिए दर्पण की भांति असंग। चीजें बनें, और मिट जायं। असंग का मतलब अनासक्ति मत समझ लेना। असंग का मतलब अनअटेच्ड नहीं है। असंग का अर्थ बहुत अद्‌भुत है। असंग का अर्थ है पूरी तरह जुड़े हुए, फिर भी नहीं जुड़े हुए। जब किसी को प्रेम करो तो पूरा प्रेम करना, उस क्षण वह रह जाय जिससे प्रेम किया है और जितना प्रेम कर सको पूरा कर लेना, क्योंकि जितना पूरा हो सकेगा उतना ही मुक्त हो सकोगे। जितना अधूरा रह जायगा, उतना ही अटका रह जायगा। उतना ही पीछा करेगा। लौट लौट कर पीछे की याद आयेगी, उसे और प्रेम कर लेता और प्रेम दे देता और प्रेम ले लेता। पूरा कर लेना प्रेम, जब प्रेम करो। क्योंकि प्रेम के क्षण हैं और फिर पार हो जाना। क्योंकि जिंदगी कहीं नहीं रुकती। सब चीजें पार हो जाती हैं। जब दुबारा वह सामने आ जाय तो फिर प्रेम जग जायेगा, और वह बिदा हो जायगा। मन रोज रोज खाली हो जाय और दर्पण बन जाय तो आदमी ने पा लिया जिंदगी का राज। पा लिया उसने परमात्मा का राज।

परमात्मा रुका हुआ नहीं है। इसीलिए तो रोज नयी चीजें पैदा कर पाता है। नहीं तो रामचंद्र जी को भी पैदा करता चला जाय रोज रोज, कृष्ण भगवान को पैदा करता चला जाय, आपको पैदा ही नहीं करता कभी। क्योंकि आप बिलकुल नये हैं। यदि वह पुरानी तसवीर ही पैदा करे तो बस राम ही राम पैदा कर दे; जैसे फोर्ड की कारें आती हैं बस वही कारें रोज निकलती चली जाती हैं। लाख कारें, एक सी निकल आती हैं। पर भगवान कुछ अनूठा मालूम होता है। जीवन कुछ अनूठा मालूम होता है। सब नया होता है वहां, वहां कुछ पुराना नहीं है। जो पौधा एक दफा पैदा हुआ, फिर दुबारा नहीं होगा। एक जैसे दो पत्ते भी

नहीं खोजे जा सकते हैं। एक जैसे दो पत्थर नहीं खोजे जा सकते हैं। एक जैसे दो आदमी नहीं खोजे जा सकते हैं। आप जैसा कोई नहीं है, आप अनूठे हैं। कोई मेरे जैसा न कभी था, न होगा। उस दिन कितना अनुग्रह मन को मालूम होगा। मैं अनूठा हूं, इस अंतहीन जग में अनंत लोग पैदा हुए हैं, लेकिन मैं कभी नहीं हुआ और अनंत अनंत लोग पैदा होंगे, लेकिन मैं फिर कभी पैदा नहीं होऊंगा। एक एक आदमी अनूठा है। कितनी अनुकम्पा है उसकी। पुनरुक्ति नहीं है आप। आप दोहराये नहीं गये हैं, आप रिपीटीशन नहीं हैं। बस, आप बिलकुल आप हैं। ईश्वर ने इतना सम्मान दिया है एक एक आदमी को जिसका कोई हिसाब नहीं। इस सम्मान के बदले में हम कुछ भी नहीं चुका सकते। कोई उपाय नहीं है इस सम्मान को चुकाने का। एक एक आदमी को बनाया है अद्वितीय, एक एक पत्ते को, एक एक फूल को बनाया है अद्वितीय। अद्वितीयता छायी हुई है सब तरफ। लेकिन हम अपने को पुराने करने में लगे हुए हैं। हम अपने को नया नहीं होने देते। हम कहते हैं, मैं तो वही हूं, जो कल था। हम तो कहते है, मैं वही हूं जो परसों था। हम तो कहते हैं, मैं वही हूं जो सदा था। मैं बिलकुल वही हूं जो कल था, जो परसों था। हम अपने को पुराना करने में लगे हुए हैं और भगवान नया करने में लगा है। इसलिए विरोध पैदा हो गया है। इस विरोध से तनाव है, बोझ है, परेशानी है। नहीं, पुराना तो नहीं हुआ जा सकता है, नया ही हुआ जा सकता है और फिर क्यों पीछे की तरफ पड़े हुए हैं, क्यों नहीं नये हो जाते? क्यों नहीं खुल जाते उसके लिए जो है। और बंद हो जाते उसके लिए जो हो चुका है। मर जायं अतीत के प्रति। जो अतीत के प्रति मरता है, वही वर्तमान में जीता है। जो अतीत के प्रति नहीं मर सकता, वह वर्तमान में नहीं जो सकता। और जीवन अभी है, जीवन वर्तमान है—अभी और यहीं। अतीत के प्रति मर जाना ध्यान की अद्भुत प्रक्रिया है। यहां हम आये हैं, तीन दिन के लिए तो कम से कम एक प्रयोग करें कि मर जायं अतीत के प्रति, भूल जायं उसको जो आप थे, और जानें उसको जो आप हैं और ये दोनों चीजें बिलकुल अलग हैं। और जो आप थे, वह आप नहीं हैं और जो आप हैं, वह आप कभी नहीं थे। मर जायं अतीत के प्रति, डाइ टू दि पास्ट। वही रहस्य है, वही सीक्रेट है। अतीत के प्रति प्रतिपल मरते चले जायं, एक एक क्षण मरते चले जायं, जो बीत गया, वह बीत गया, जो है वह है। और उस 'है' में पूरे जागें। उस 'है' में पूरे जियें तो बोझ हट जायगा। ट्रेन में बैठे हैं। ट्रेन लिये चली जा रही है, पर अपने सिर पर आप किस लिए रखे हुए हैं बोझ? उसे उतार दें, नीचे फेंक दें। इतना बड़ा सब चल

रहा है। आप ही क्यों इस फिक्र में पड़े हुए हैं कि मैं यदि इस बोझ को न ले जाऊंगा तो पता नहीं दुनिया का क्या हो जायगा !

मैंने सुना है, वह जो छिपकली हैं मकान पर उल्टी लटकी रहती हैं। उनको यही ख्याल है कि मकान उन्हीं के सहारे थमा हुआ है। अगर वह हट गयीं तो मकान गिर जायगा। पूछ लेना किसी छिपकली से, वह यही कहती पायी जाती है कि अगर हम हट गये तो मकान गिर जायगा। सुना है मुर्गों को, वे यही समझते हैं कि सुबह हम बांग देते हैं इसलिए सूरज उगता है। एक गांव में एक आदमी था ! उसके पास एक ही मुर्गा था। गांव के लोगों से उसका झगड़ा हो गया। उसने कहा कि मरो, हम अपने मुर्गे को लेकर दूसरे गांव में चले जायेंगे। याद रखना, सूरज कभी नहीं निकलेगा। वह आदमी अपने मुर्गे को लेकर चला गया दूसरे गांव। तो दूसरे गांव में उसके मुर्गे ने बांग दी। सूरज उगा, उसने कहा, अब सिर पीटते होंगे। सूरज इस गांव में उग आया है। अब रोयेंगे, पछतायेंगे जो मुझसे झगड़ा करके मुसीबत ली। सूरज उस गांव में उगता है, जहां मेरा मुर्गा बांग देता है।

हम सब भी इसी ख्याल के लोग हैं। सारी दुनिया को उठाये हुए हैं अपने सिर पर। हर आदमी को यही ख्याल रहा कि अगर मैं नहीं रहा तो न मालूम क्या हो जायगा ! कुछ भी नहीं होता है। कहीं कोई पत्ता भी नहीं हिलेगा। कितने लोग रहे हैं पृथ्वी पर। आज नहीं हैं—क्या हो गया ? सबको यही भ्रम रहता है। सभी यह भ्रम पालते हैं। बहुत बोझ लेकर चलते हैं, अपने होने का। अपने होने का जो बोझ लेकर चलता है, वह होने को नहीं जान सकेगा। होने को जानने के लिए निर्बोझ होना जरूरी है।

इसलिए पहला बोझ है अतीत का, उसे जाने दें। दूसरा बोझ है, इस बात का कि जैसे मैं ही सारी दुनिया को चला रहा हूं। हर आदमी को ख्याल है कि मैं सारी दुनिया को चला रहा हूं। हर आदमी अपने को सेंटर माने हुए है। सारी दुनिया उसी कील पर चल रही है। कोई भी सेंटर नहीं है, कोई भी केंद्र नहीं है। कोई भी दुनिया को नहीं चला रहा है। दुनिया चल रही है। उसमें हम चल रहे हैं। ट्रेन भाग रही है, उसमें हम बैठे हुए हैं। लेकिन यह ख्याल कि में चला रहा हूं, पीछा नहीं छोड़ता।

पुरानी मैंने एक कहानी सुनी है। एक आदमी रोज रोज भगवान के मंदिर में जाकर प्रार्थना करता था कि मुझे मोक्ष चाहिए, मुक्ति चाहिए। एक दिन भगवान घबरा गया। उस मंदिर के भगवान घबरा गये होंगे, आखिर भगवान भी मंदिरों में घबरा जाते हैं तो भगवान प्रकट हो गये और उन्होंने कहा, तुझे मुक्ति चाहिए तो

अभी ले ले। उस आदमी ने कहा, अभी, एकदम ! अभी कैसे ले सकता हूं ? अभी मेरा बच्चा छोटा है। जरा जवान हो जाय, उसकी मैं शादी कर लूं। भगवान ने कहा, इतने दिनों से तू मुझे परेशान किए हुए है कि मोक्ष चाहिए, मोक्ष चाहिए। उसने कहा, चाहिए जरूर मुझे, लेकिन ठीक अभी नहीं चाहिए। आगे चाहिए। आप मुझे आश्वासन दे दें। मेरा लड़का बड़ा हो जाय, मैं उसकी शादी कर लूं। क्योंकि मेरे बिना कौन उसकी शादी करेगा ? भगवान वापस चले गये। फिर उस लड़के की शादी हो गयी। वह शादी करके लौटा था घर और रात अपने कमरे में सोया था। भगवान प्रगट हुए और उन्होंने कहा, अब तेरे लड़के की शादी हो गयी। उसने कहा, आप भी बड़ी जल्दी मचाये हुए हैं। कम से कम उसका बच्चा हो जाय, मैं थोड़ा उसके बच्चे को खिला लूं। उसका बच्चा होगा तो कौन खिलायेगा ? अभी लड़का नासमझ है। बहू नासमझ है। घर में कोई अनुभवी नहीं है। मेरे बिना कैसे बच्चा उसका बड़ा होगा ? जरा बच्चा उसका बड़ा हो जाय, मैं बिलकुल तैयार हूं। भगवान वापस चले गये। निराश नहीं हुए, लेकिन आशा बांधे रखी कि फिर उसके लड़के का लड़का भी हो गया और वह लड़का बड़ा भी हो गया। फिर देखा कि अब तो वह लड़का स्कूल पढ़ने जाने लगा। भगवान फिर आये। बूढ़े ने कहा, आप तो मेरे बिलकुल पीछे ही पड़ गये हैं। अब वह लड़का स्कूल जाने लगा है। पढ़-लिख ले, उसकी शादी कर दूं, उसकी शादी हुई कि फिर मैं चलूंगा। भगवान ने कहा, लेकिन मामला बहुत मुश्किल है। फिर शर्तें शुरू हो जायेंगी, उसकी शादी होगी, फिर उसका लड़का होगा। तो उस बूढ़े ने कहा कि फिर क्षमा करिए, फिर वह मोक्ष रहने दीजिए। आपको आने की जरूरत नहीं है। मैं ही आकर बता दूंगा कि अब मुझे मोक्ष चाहिए।

हम सबको यही ख्याल है कि हम चला रहे हैं। क्यों है यह ख्याल? यह इसलिए है कि हम चला रहे हैं, इसमें बड़ा मजा आता है। लगता है कि हम कुछ हैं। यह हमारे अहंकार की घोषणा है कि हम चला रहे हैं, मैं चला रहा हूं। अहंकार को तृप्ति मिलती है। सचाई यह नहीं है कि दुनिया चल रही है। सचाई सिर्फ इतनी है कि मैं चला रहा हूं। इस ख्याल से 'मैं' मजबूत होता है और जितना 'मैं' मजबूत होता है, उतना ही ध्यान में प्रवेश असंभव है। तो दूसरी बात समझ लेना जरूरी है कि आप कुछ चला नहीं रहे हैं। एक बड़ी चलती हुई दुनिया के आप सिर्फ एक हिस्से हैं—एक बहुत बड़े जगत् के, एक बहुत बड़े चलते हुए ब्रह्मांड के। एक बहुत बड़ी गति के आप सिर्फ एक हिस्से हैं। अगर यह हाथ मेरा जानता हो तो यह हाथ समझता होगा कि मैं हूं सब। जरूर समझता

होगा, लेकिन इसे पता नहीं है कि यह बड़े शरीर का हिस्सा है। यह हाथ अगर जानता होगा तो सोचता होगा कि मैं उठाता हूं सब। ये आंखें अगर जानती होंगी तो सोचती होंगी कि हम देख रही हैं। लेकिन आंखों को पता नहीं कि आंखें नहीं देख रही हैं। एक बड़े शरीर का हिस्सा हैं। अगर मेरे पेट को पता होगा, तो वह सोचता होगा कि मैं भूख बना रहा हूं– भोजन पचा रहा हूं, लेकिन पेट कुछ भी नहीं पचा रहा है। वह एक बड़े शरीर का हिस्सा है। यह जिंदगी इकट्ठी है। यह सारा जगत इकट्ठा है। इस इकट्ठे में हम टुकड़े की तरह काम कर रहे हैं। लेकिन हमको यही ख्याल कि हम कर रहे हैं, इससे मुसीबत हो रही है। सब हो रहा है, हम उसके एक हिस्से हैं। अगर सूरज दस करोड़ मील है, वह ठंडा हो जाय तो हम यूं ही ठंडे हो जायेंगे, इसी वक्त। हमें पता ही नहीं चलेगा कि सूरज कब ठंडा हो गया है। क्योंकि पता होने के लिए तो हमें होना चाहिए। सूरज ठंडा हुआ कि हम ठंडे हुए। तब हमें पता चलेगा कि सूरज भी चला रहा था। वह सूरज चला रहा था, उसके साथ हम चल रहे थे। हमारे हृदय की धड़कन उस सूरज की धड़कन से जुड़ी थी और कौन जाने कोई दूर के बड़े सूरज हमारे सूरज को चलाते हों क्योंकि जिंदगी एक अंतः संबंध है। सब जुड़ा हुआ है। उस सब जुड़े में यह ख्याल पैदा हो जाना कि मैं कर रहा हूं, मैं चला रहा हूं, बोझ लेना है। व्यर्थ बोझ लेना है। चलती गाड़ी में क्यों अपनी पेटी और बिस्तर सिर पर रखकर बैठ गये? जिंदगी चल रही है और हम भी उसमें चल रहे हैं। हम चला नहीं रहे हैं। बृहत् है गति। उस गति के सिर्फ हम एक अणु-मात्र हैं। ऐसी जो भाव दशा हो, उस भाव दशा में समर्पण हो जाना है। और समर्पण सरेंडर किया नहीं जाता। बस, यह समझ पैदा हो जाय, तो सरेंडर हो जाता है। समर्पण ही ध्यान है।

कुछ लोग कहते हैं कि मैं जाकर भगवान को समर्पण कर दूंगा। 'यह कर दूंगा' की भाषा समर्पण कभी नहीं हो सकती, क्योंकि अगर आपने कहा, कि मैं समर्पण कर दूंगा तो आपने समर्पण को भी एक कृत्य बना लिया है, ऐक्ट बना लिया है। ऐक्ट कभी सपर्पण नहीं होता। एक आदमी कहता है, कि मैंने जाकर भगवान के चरणों में समर्पण कर दिया। यह कभी कुछ नहीं हुआ, क्योंकि वह कहता है कि मैंने कर दिया। वह चाहे तो कल कह दे, अच्छा वापस ले लिया। समर्पण कभी वापस लिया नहीं जा सकता। इसलिए समर्पण कभी किया भी नहीं जा सकता। समर्पण हो जाता है। समझ का परिणाम है। अगर हम समझें जीवन की व्यवस्था को, तो समर्पण समर्पण हो जायगा। वह हमें

करना नहीं पड़ेगा और वह हो जाये तो ध्यान शुरू हो जायगा। य दो तीन बातें कहीं—एक तो अतीत के बोझ को समझो। उसे व्यर्थ उठाये हुए हो। दूसरा मैं कह रहा हूं, वह कर्त्ता का बोझ उसे समझो। चीजें हो रही हैं, हम कर नहीं रहे हैं। और चीजों का कितना विराट् जाल है होने का। उसके ओर छोर का भी हमें कोई पता नहीं, पता हो भी नहीं सकता, कभी। उस सब होने की विराट् व्यवस्था में अपने को छोड़ दें, लेट गो। भूल जायें करना, भूल जायें कर्तृत्व, भूल जायें कर्त्ता, रह जाय वही जो है और बस सब कुछ हो जायगा। वह हो जाना, हमें वहां पहुंचा देता है जहां हम हैं। जहां से हम कभी नहीं हटे, जहां से हम कभी डिगे नहीं, जहां से हम कहीं गये नहीं। लेकिन उस तक पहुंचने के लिए करने की, होने की, सारी बोझ की स्थिति से मुक्त हो जाना जरूरी है।

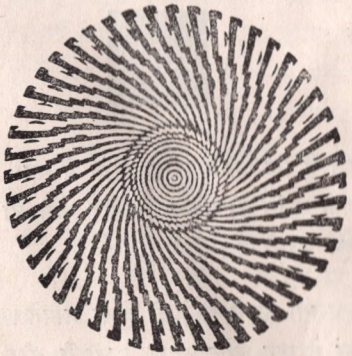

संकलन :
श्री हिम्मत जोशी

'जिन बूझा तिन पाइयां....'

प्रश्नोत्तर वार्त्ता

एक मित्र ने पूछा है कि शांति और क्रांति में क्या संबंध हो सकता है? करुणा और क्रांति में क्या संबंध हो सकता है और कैसे हो सकता है? ये दोनों बातें तो विरोधी मालूम पड़ती हैं।

रास्ते पर कभी चलती बैलगाड़ी देखी होगी आपने। गाड़ी का चाक चलता है लेकिन चाक के बीच में एक कील ठहरी रहती है और चलती नहीं है। क्या कभी यह दिखायी पड़ा कि ठहरी हुई कील के ऊपर ही चाक का चलना निर्भर होता है। दोनों में विरोध है–कील ठहरी हुई है और चाक चलता है। मजे की बात यह है कि कील ठहरी हुई है इसलिए चाक चलता है। अगर कील भी चल जाय तो चाक न चल पाये। ठहरी हुई कील पर चलते हुए चाक का आधार है। जीवन बहुत विरोधों से निर्मित है। कभी जोर का बवण्डर देखा हो, तूफान देखा हो, धूल का आकाश में उड़ता हुआ गुबार देखा हो और

जमीन पर पड़े हुए उसके चिन्ह देखे हों, तो एक बात देखकर हैरान होंगे कि सब तरफ तो गुबार के चिन्ह बन जाते हैं, लेकिन बीच में एक जगह खाली रह जाती है, वहां कोई तूफान नहीं होता। उठी हुई आंधी के घेरे के बीच में एक जगह होती है जहां सब शांत होता है, जहां कोई तूफान नहीं होता है।

शांति मनुष्य के भीतर चाहिए और क्रांति उसके बाहर के जीवन में चाहिए। शांति बनेगी कील और क्रांति होगी घूमता हुआ चाक और हम सोचते हैं कि इन दोनों में से एक को बचा लें। या तो हम सोचते हैं कि शांति ही बच जाय, कील ही बच जाय, चाक न रहे, तो कील व्यर्थ हो जायगी, क्योंकि कील की सार्थकता चाक के साथ ही है। भारत ने, पूरब के मुल्कों ने यह प्रयोग करके देख लिया है कि शांति ही बच जाय, क्रांति की कोई जरूरत नहीं है, तो हम मुर्दा हो गये जमीन पर, मरे हुए लोग हो गये। हमारा अस्तित्व अनस्तित्व जैसा हो गया, न होने के बराबर हम हो गये और अच्छा था कि न हो जाते। हमारा होना न होने से भी दुखद हो गया। रुग्ण, बीमार, दीन-हीन, दरिद्र, दास। हमने जीवन की सारी पीड़ा झेल ली एक गलती के आधार पर कि हमने कहा, हम कील बचायेंगे, हम चाक नहीं बचायेंगे क्योंकि चाक कील का विरोधी है। हम केवल शांति बचायेंगे, क्रांति की, परिवर्तन की हमें कोई जरूरत नहीं। पश्चिम ने दूसरी भूल कर ली। उन्होंने चाक बचा लिया और कील फेंक दी। अब चाक को लिए बैठे हैं लेकिन बिना कील के चाक बेकार है। उन्होंने क्रांति बचा ली है, परिवर्तन बचा लिए है, शांति की फिक्र छोड़ दी है। उनका भी तर्क यही है कि अगर क्रांति करनी है तो शांति की क्या जरूरत है। और ध्यान रहे, दिखायी पड़ता है कि पूरब और पश्चिम उल्टे हैं लेकिन दोनों का तर्क एक है। पूरब का तर्क यह है कि अगर शांति चाहिए तो क्रांति की क्या जरूरत है? पश्चिम का तर्क है कि अगर क्रांति चाहिए तो शांति की क्या जरूरत है? दोनों का तर्क भिन्न नहीं है। दोनों का तर्क एक है और वह इस बात पर निर्भर है कि जीवन में से हम एक चीज को चुनेंगे, विरोध को हम छोड़ देंगे। लेकिन जीवन विरोध से बना है, जीवन की सारी व्यवस्था विरोध पर खड़ी है। कभी किसी मकान का दरवाजा देखें। दरवाजे में कारीगर ने विरोधी ईंटें लगा दी हैं। एक तरफ से ईंटें गयी हैं और दूसरी तरफ से ईंटें आयी हैं। और दोनों ईंटों में विरोध है। दोनों के विरोध के ऊपर सारा भवन खड़ा हो गया है। हम कह सकते हैं कि ईंटें एक ही दिशा में लगा सकते थे, लेकिन फिर भवन खड़ा नहीं होता। दो विरोध के आधार पर बल पैदा होता

है, इसलिए जीवन सभी विरोधों के आधार पर खड़ा हुआ है। स्त्री और पुरुष एक तरह का विरोध है, ऋण और धन एक तरह का विरोध है। निगेटिव और पोजीटिव पोल्स एक तरह का विरोध है। अगर हम जिन्दगी को खोजने जायेंगे तो सब तरफ विरोध मिलेंगे और विरोधों के आधार पर जीवन का भवन खड़ा होता हुआ मिलेगा। लेकिन पूरब ने भी इस बात को न समझा और पश्चिम ने भी न समझा। पूरब ने भी आधी संस्कृति बनायी, कहा कि हम सिर्फ जिन्दा रहेंगे, शांत होकर रहेंगे। पश्चिम ने कहा हम जिन्दा रहेंगे तो क्रांत होकर रहेंगे। शांति से क्या संबंध है? यह ऐसा ही है जैसे मैं कहूं मैं सांस सिर्फ भीतर ले जाऊंगा बाहर न ले जाऊंगा, क्योंकि बाहर ले जाने और भीतर ले जाने में विरोध है। अब जब भीतर सांस ले जानी है तो बाहर सांस ले जाने की क्या जरूरत है। और जब भीतर ले जानी है तो भीतर ही ले जाइये और रोक रखिये भीतर, सांस को बाहर मत जाने दीजिये क्योंकि बाहर और भीतर में विरोध है, लेकिन अगर भीतर ही सांस रोक लें तो मर जायेंगे। दूसरा आदमी कहता है कि जब बाहर ले जानी ही पड़ती है तो भीतर क्यों ले जायें, बाहर ही रोक दें। दोनों में विरोध है। हम बाहर ही रोक देते हैं। बाहर रोकने वाला भी मर जायेगा। एक भीतर रोककर मरेगा, एक बाहर रोककर मरेगा, क्योंकि जिन्दगी बाहर-भीतर आते हुए विरोधों पर निर्भर है। जिन्दगी निरंतर विरोध पर निर्भर है, लेकिन हम इस विरोध को कभी स्वीकार नहीं कर पाते, इसलिए बड़ी मुश्किल हो जाती है। हम कहते हैं जन्म तो हमें स्वीकार है, मृत्यु हमें स्वीकार नहीं है। यह बड़े पागलपन की बात है। जिन्दगी जन्म और मृत्यु के विरोध के आधार पर खड़ी हुई है। जिन्दगी जन्म और मृत्यु के विरोध पर ही निर्भर है। हम कहते हैं, जन्म तो बहुत सुखद है, मृत्यु बहुत दुखद है। जन्म स्वीकार करते हैं, मृत्यु हम नहीं चाहते, तो पागलपन की बात कर रहे हैं। जिस दिन हम जन्म और मृत्यु दोनों को एक साथ स्वीकार कर पायेंगे उस दिन जिन्दगी का रस कुछ और ही हो जायगा। शांति और क्रांति एक साथ स्वीकार करेंगे, तो जिन्दगी कुछ बात और ही हो जायगी। भीतर एक बिन्दु होगा जहां कोई परिवर्तन नहीं और बाहर परिवर्तन, और परिवर्तन का घूमता हुआ चाक होगा और...और भीतर एक कील होगी जहां कोई परिवर्तन नहीं। परमात्मा निरंतर वहां है जहां कोई परिवर्तन नहीं। संसार वहां है जहां निरंतर परिवर्तन है। और वह जो परमात्मा है निरंतर शांत, चुप, मौन, जहां कभी कुछ न बदला, उसके ऊपर ही सारे संसार का चाक घूम रहा है।

संसार शब्द आपके ख्याल में है? संसार का अर्थ एक चाक होता है। संसार का अर्थ होता है जो घूम रहा है—पहिया। संसार शब्द का ही मतलब होता है घूमता हुआ, और परमात्मा का अर्थ होता है ठहरा हुआ। लेकिन ये दोनों विरोधी नहीं हैं। इस अर्थ में विरोधी नहीं हैं कि एक को हम बचा लेंगे। यह इस अर्थ में विरोधी हैं कि दूसरा एक पर निर्भर है। भीतर आती सांस बाहर जाती सांस पर निर्भर है। संसार न हो तो परमात्मा भी न होगा और परमात्मा न हो तो संसार भी न होगा। और इस भूल में मत रहना कि परमात्मा एक क्षण भी संसार के बिना रह सकता है और इस भूल में भी मत पड़ना कि संसार एक क्षण भी परमात्मा के बिना रह सकता है। वे दोनों विरोधी ध्रुव हैं जो एक दूसरे को सम्हाले हुए हैं। और इसलिए मुझे सब विरोध स्वीकार है। क्रांति और शांति के विरोध को मैं जिन्दगी को बदलने, परिवर्तन करने और जिन्दगी को उससे भी जोड़ने में उपयोगी मानता हूं जो सनातन है, शाश्वत है, जिसका कभी कोई परिवर्तन नहीं होता है। लेकिन मेरी बातों में इसलिए कठिनाई हो जाती है कि कोई कहता है कि आप इधर क्रांति की बात कर रहे हैं, उधर आप शांति की बात करते हैं। और मैं मानता ही ऐसा हूं कि वही आदमी क्रांति कर सकता है जो शांत है और जो आदमी शांत नहीं है, अगर क्रांति करेगा तो क्रांति के नाम पर सिर्फ पागलपन करेगा, और कुछ भी नहीं कर सकता है। सिर्फ शांत व्यक्ति क्रांति कर सकता है। जो आदमी शांत नहीं है, अगर क्रांति करेगा तो क्रांति के नाम पर सिर्फ पागलपन करेगा और कुछ भी नहीं कर सकता है। सिर्फ शांत व्यक्ति क्रांति कर सकता है। शांत हाथों में ही क्रांति का हथियार दिया जा सकता है, अन्यथा क्रांति का हथियार खतरनाक सिद्ध हुआ है और खतरनाक सिद्ध होता रहेगा। इसलिए मैं कहता हूं, करुणा पहला सूत्र है, क्रांति उसके पीछे आनी चाहिए, करुणा पहले।

★

एक दूसरे मित्र ने पूछा है कि आप कहते हैं कि जो है उसे समझ लेने से करुणा आ जायेगी? जो है, उसे समझ लेने से करुणा कैसे आ जायेगी?

अगर जो है उसे हम समझ लें तो करुणा के अतिरिक्त हमारे चित्त में और कुछ भी न रह जायगा क्योंकि जो है वह इतना दुःखद हो गया है, जो है इतना रुग्ण हो गया है, जो है हमारे चारों तरफ फैला हुआ वह इतना बीमार और विक्षिप्त हो गया है कि अगर हम उसे देख लें और समझ लें तो करुणा

के सिवाय और कोई भाव न आयेगा। लेकिन हो सकता है, आप कहें, क्रोध आ जाय? क्रोध तब आता है जब हम पूरी स्थिति से अपने को बाहर खड़ा कर लेते हैं। करुणा तब आती है जब पूरी स्थिति में हम भी सम्मिलित और एक हिस्सा होते हैं। अगर आज कोई आदमी चोरी कर रहा है तो हमें क्रोध आ सकता है कि इस चोर को मिटा डालें। लेकिन अगर हमें पूरी स्थिति का पता चल जाय और यह ख्याल आ जाय कि हम भी उसकी चोरी में हाथ बंटा रहे हैं, हम भी उसकी चोरी में साझीदार हैं, वह जो मजिस्ट्रेट अदालत में बैठकर चोरों का निर्णय कर रहा है वह भी चोरों की चोरी में साझीदार है। अगर हमें यह ख्याल आ जाय तो मजिस्ट्रेट को क्रोध नहीं आयेगा, करुणा आयेगी और चोर को सजा देते वक्त वह यह जानेगा कि मैं अपने को सजा दे रहा हूं और तब सजा देना बहुत मुश्किल हो जायेगा। परिवर्तन और क्रांति करना आसान हो जायेगा। चोरों को सजा हम कितने दिन से दे रहे हैं, लेकिन एक चोर को हम कम नहीं कर पाये। जमीन पर चोर रोज बढ़ते गये हैं। जितनी सजा बढ़ी है उतने चोर बढ़ते गये हैं, जितने जेलखाने बढ़े हैं उतने चोर बढ़ते चले गये हैं। पृथ्वी पर अनादि से हम चोरों को सजा दे रहे हैं लेकिन एक चोर कम नहीं कर पाये। उसका कारण यह है कि चोर को सजा देते वक्त हम अपने को बाहर रख लेते हैं। हम सोचते हैं कि हम तो चोर नहीं हैं, जो चोरी कर रहा है वह चोर है, उसको सजा दे रहे हैं। लेकिन हमारे गहरे हाथ हैं और इसलिए चोर को सजा मिल जाती है लेकिन चोरी बन्द नहीं होती क्योंकि हम, जिसका हाथ चोर को पैदा करने में था, तबतक दूसरे चोर पैदा कर लेते हैं। बल्कि हम जिस कारागृह में चोरों को बन्द करते हैं वह चोरों के लिए शिक्षा का प्रशिक्षण महाविद्यालय हो जाता है, और कुछ भी नहीं होता। वहां और पुराने, ज्यादा योग्य, ज्यादा कुशल चोरों का साथ हो जाता है और कुछ भी नहीं होता। वहां और अच्छी तरह चोरी करना सीखकर वापस लौट आते हैं। इसलिए एक दफा जो आदमी जेल चला गया है फिर वह नियमित रूप से जेल जाने लगता है, वह 'जेल का पंछी' ही हो जाता है, उस पंछी का घर ही वहीं हो जाता है। उसे यहां उतना अच्छा नहीं लगता है जितना वहां अच्छा लगने लगता है। वहां उसके संगी-साथी-मित्र सब इकट्ठे कर दिये हैं, वहां हमने चोरी के लिए सब को इकट्ठा कर दिया है, पूरे प्रदेश के चोरों को, कि तुम एक साथ सलाह–मशविरा करो और एक दूसरे को तरकीबें बताओ कि कैसे पकड़ा न जा सके। और हम चारों तरफ चोर पैदा किये चले जा रहे हैं। सजा

हम इसलिए दे भी नहीं रहे हैं कि चोर को मिटा देना है। क्योंकि चोर तो हम भी हैं। अगर चोर मिटेगा तो हम भी मिट जायेंगे। सजा हम इसलिए दे रहे हैं कि हम जो सजा देने वाले हैं, अपने मन में यह मजा ले सकें कि हम चोर नहीं हैं, चोर कोई और है इसका हम आनंद ले रहे हैं। यह तो क्रोध है चोर के ऊपर। इससे कोई परिवर्तन नहीं होगा।

मैंने सुना है, इंगलैंड में सौ वर्ष पहले जो आदमी चोरी करता था उसे चौराहों पर खड़ा करके कोड़े मारे जाते थे ताकि और लोग देख लें और दूसरे लोग सचेत हो जायें कि चोरी करने वाले की यह गति और यह दुर्गति होती है। लेकिन सौ वर्ष पहले फिर यह सजा बन्द कर देनी पड़ी, क्योंकि नतीजे बड़े उल्टे आये। लंदन में एक चौराहे पर कुछ पांच–छः को कोड़े मारे जा रहे थे। हजारों लोग देखने इकट्ठा हुए थे। आप यह मत सोचना कि वे यह देखने इकट्ठे हुए थे कि चोरों की क्या गति होती है! वह असल में यह देखने इकट्ठे हुए थे कि जब कोड़े मारे जाते हैं तो चमड़ा कैसे उघड़ता है, खून कैसे बहता है। उनके दिल में भी कई दफा कोड़े मारने की इच्छा हुई होगी, वह अधूरी रह गयी। वह उसे देखकर पूरा कर लेना चाहते हैं। वह वहां से चोरी नहीं करनी चाहिए यह सीखकर नहीं लौटते हैं। वह वहां से कोड़ा मारने का कैसा रस और मजा है इसकी थ्रिल और इसकी पुलक लेकर वापस लौटते हैं। लेकिन एक दिन तो और अद्‌भुत घटना घटी। उस दिन नगर में जब चार-पांच चोरों को कोड़ों से पीटकर बेहोश कर दिया गया और सड़क खून से भर गयी, तो कोई दस हजार आदमी देखने इकट्ठे हुए थे। तभी पता चला कि कुछ लोगों की जेबें कट गयीं। भीड़ थी, लोग देख रहे थे चोरों को पिटते हुए। कुछ चोरों ने उनकी जेबें काट लीं तब यह पता चला कि जब चोर पीटे जा रहे हों, उनकी चमड़ी उधेड़ी जा रही हो, तो उसी वक्त जेब भी कट सकती है। इससे कोई चोरी नहीं रुक सकती। कोई सजा चोरी नहीं रोक पायी है; क्योंकि सजा हमारी करुणा से नहीं है, सजा हमारे क्रोध से निकल रही है। क्रोध से कोई परिवर्तन कभी भी नहीं होता है और क्रोध से अगर परिवर्तन जबरदस्ती थोप भी दिया जाय तो बहुत जल्दी विद्रोह शुरू हो जाता है, बगावत शुरू हो जाती है। और क्रोध को कितनी देर थोपा जा सकता है? आज नहीं कल क्रोध को शिथिल होना पड़ता है।

रूस में एक क्रांति हुई जो क्रोध से हुई, करुणा से नहीं। तीस, पैंतीस, चालीस वर्ष तक उन्होंने कोड़े के बल पर क्रांति को बचाने की कोशिश की, बंदूक

के बल पर क्रांति को बचाने की कोशिश की। अंदाज किया जाता है कि कोई साठ लाख से एक करोड़ लोगों की रूस में हत्या की गयी क्रांति के बाद। क्रांति को बचाने के लिए यह हत्या करनी पड़ी। कोई हर्ज नहीं अगर क्रांति बच जाय तो समझ में आता है। लेकिन इतनी हत्या के बाद इतने लोगों को इतना कष्ट, इतनी पीड़ा देने के बाद अब वहां क्रांति शिथिल होने लगी; क्योंकि इस तरह की जबरदस्ती से कोई क्रांति कितनी देर टिकाई जा सकती है! वापस रूस व्यक्तिगत पूंजी को बांटने की तरफ सोचने लगा। मकान व्यक्तिगत अब हो सकता है और कार भी अब व्यक्तिगत हो सकती है। ऐसा लगता है कि आने वाले पचास वर्षों में रूस और अमरीका में फर्क करना बहुत मुश्किल हो जायगा कि कौन समाजवादी है और कौन पूंजीवादी? क्योंकि अमरीका में भी पूंजीवाद को जबरदस्ती थोपने की कोशिश मुश्किल हुई जा रही है। वे धीरे धीरे न मालूम कितनी चीजों का राष्ट्रीयकरण करते चले जा रहे हैं। इधर रूस में जबरदस्ती समाजवाद थोपने की बात मुश्किल होती चली जा रही है। वे धीरे धीरे पूंजीवाद को मौका दिये चले जा रहे हैं। पचास साल में वे एक जगह आ जायेंगे –जहां दोनों के बीच फासला करना मुश्किल होगा। नाम के फासले रह जायेंगे, एक समाजवादी होगा, एक पूंजीवादी होगा, लेकिन फासले नहीं रह जायेंगे।

जबरदस्ती किसी भी चीज को बहुत देर तक नहीं ठहराया जा सकता है। और एक मजा है कि जिस चीज को हम जबरदस्ती ठहराते हैं, बहुत जल्दी पैंडुलम उलट जाता है। अगर आप किसी दुश्मन की छाती पर बैठ गये हैं जबरदस्ती और पूरी ताकत से उसको दबा रहे हैं, अगर वह होशियार है और चुपचाप पड़ा रहे और ताकत न लगाये तो थोड़ी देर में आप थक जायेंगे। क्योंकि आपको ताकत लगानी पड़ी है और वह ताकत को इकट्ठा कर लेगा उतनी देर में। बहुत जल्दी वह मौका आयेगा कि आप नीचे पड़े होंगे और वह ताकत को इकट्ठा कर लेगा उतनी देर में। बहुत जल्दी वह मौका आयेगा कि वह आपकी छाती पर बैठा होगा। क्योंकि जो श्रम करता है, वह थक जाता और जो नीचे दबा होता है, वह विश्राम कर लेता है। क्रोध और प्रतिशोध से क्रांति नहीं होती। क्रांति से मेरा मतलब है मनुष्य का हमने आज तक जैसा निर्माण किया है उसमें भूल हो गयी है। उस भूल की वजह से हम बहुत दुख और बहुत पीड़ा और चिन्ता उठा रहे हैं। उस भूल के कारण पूरी मनुष्य जाति पागल होने के करीब पहुंच गयी है। उस भूल

को समझ कर, उस भूल को पहचान कर, उस भूल को देख कर स्वभावतः करुणा पैदा होगी क्योंकि वह भूल हमने ही मिल-जुल कर की है। यह घाव हमने ही मारे, चाहे नींद में मारे हों—चाहे बेहोशी में मारे हों। हमने अपने ही पैर अपने हाथ से काट लिये हैं और अपनी आंखें अपने हाथों से फोड़ ली हैं और अपने को सब तरह से अपंग कर लिया है। यह मनुष्य की जो अपंग स्थिति है, पैरालाइज्ड—लकवा लगी हुई, सड़क पर घिसटती हुई, घावों से भरी हुई, यह हम ही जिम्मेवार हैं। अगर यह प्रतीति हो, तो करुणा पैदा होती। करुणा का मतलब यह नहीं है कि किसी और पर करुणा पैदा होगी। करुणा का मतलब हम अपने पर करुणा कर पायेंगे। क्रोध असंभव हो जायगा और अगर ऐसी करुणा पैदा हो तो परिवर्तन अनिवार्य है। अगर हमें दिखायी पड़ जाय कि कुछ गलत हो गया है, तो गलत को फिर खींचने का कोई अर्थ नहीं रह जाता है। वह अपने आप गिर जायगा। करुणा से आने वाली क्रांति का अर्थ है कि हमें कुछ तोड़ने-फोड़ने का उतना सवाल नहीं है जितना समझने का सवाल है। अगर समझ पूरी हो जाय तो शायद चीजें अपने आप छूट जायं, टूट जायं, अलग हो जायं। इतनी समझ विकसित करने की बात है और वह समझ विकसित हो सकती है अगर हम अपने दुखों के मूल कारणों की खोज करें, तो समझ के विकसित होने में कोई बाधा नहीं।

★

एक मित्र ने पूछा है कि आप करुणा, अहिंसा, दया, प्रेम इन शब्दों में क्या फर्क करते हैं—ये तो सब एक ही अर्थ रखते है?

ये एक ही अर्थ नहीं रखते। इनमें बहुत बुनियादी फर्क है। असल में सही अर्थों में दो समानार्थक शब्द होते ही नहीं ह। वे कितने ही समानार्थक मालूम पड़ते हों उनमें कुछ बुनियादी फर्क होता है, इसलिए दो शब्द ईजाद करने पड़ते हैं। अब जैसे प्रेम और अहिंसा और करुणा और दया, इन्हें थोड़ा समझ लेना उपयोगी है, क्योंकि हम इन शब्दों से बहुत ज्यादा भरे हुए हैं। अहिंसा का मतलब है दूसरे को दुख न पहुंचाना। वह बिल्कुल निगेटिव है। एक आदमी बिना किसी को प्रेम किये हुए भी अहिंसक हो सकता है, क्योंकि किसी को दुख न पहुंचाना—इतना ही अहिंसा शब्द का अर्थ है—किसी की हिंसा न करना, किसी को दुख न पहुंचाना। लेकिन प्रेम पाजीटिव है। प्रेम का मतलब है: किसी को सुख पहुंचाना। प्रेम का मतलब यह नहीं है कि किसी को दुख न पहुंचाना। प्रेम

का मतलब है किसी को सुख पहुंचाना। तो प्रेम तो आयेगा किसी को सुख पहुंचाने, और अहिंसक सिकुड़ जायगा कि किसी को दुख न पहुंचे, काफी है। अगर आपके रास्ते पर कांटे बिछे हैं तो प्रेम उन्हें आकर उठायेगा। अहिंसक आपके रास्ते पर कांटे नहीं बिछायेगा, बस इतना ही। लेकिन आपके रास्ते पर पड़े कांटे को उठाने नहीं आयेगा अहिंसक; क्योंकि अहिंसक को आपको दुख नहीं पहुंचाना, इतना ही ध्यान रखना पर्याप्त है। शर्त ही इतनी है कि आपको दुख नहीं पहुंचाना है और यह भी, आपको दुख क्यों नहीं पहुंचाना है क्या इसलिए कि आपसे प्रेम है? नहीं, यह दुख इसलिए नहीं पहुंचाना है कि आपको दुख पहुंचाने से नर्क जाने की संभावना है। आपको दुख पहुंचायेंगे तो मेरे नर्क में सड़ने का उपाय हो जायगा, और अगर आपको दुख न पहुंचाया तो मेरी मोक्ष की सीढ़ी बन जायगी। आपसे कोई प्रयोजन नहीं है अहिंसक को। अहिंसक को प्रयोजन है अपने से। वह इस फिक्र में लगा है कि मैं मोक्ष कैसे जाऊं, नर्क से कैसे बचूं? इसलिए किसी को दुख नहीं पहुंचाना है। दुख पहुंचाने से कहीं नर्क न हो जाय। लेकिन प्रेम का मतलब बहुत भिन्न है। प्रेम का मतलब यह है कि किसी को सुख पहुंचाना है। और किसी को सुख पहुंचाने में ही हमारा सुख है। तब प्रेम आपको स्वर्ग पहुंचाने के लिए खुद नर्क में जाने के लिए भी तैयार हो सकता है, लेकिन अहिंसक आपको सुख पहुंचाने के लिए नर्क जाने को तैयार नहीं हो सकता है। अहिंसक आपको दुख नहीं पहुंचाता, ताकि उसके स्वर्ग जाने की तैयारी पूरी हो सके। अहिंसा निषेध है, निगेटिव है। प्रेम पोजीटिव है, विधायक है। लेकिन प्रेम और करुणा में भी बहुत फर्क है। प्रेम का अर्थ है कि हम किसी को सुख पहुंचाना चाहते हैं और किसी के सुख में भागीदार होना चाहते हैं। करुणा का अर्थ है कि हम सबके दुख में भागीदार हैं और सबका दुख हमें दिखायी पड़ गया है और चित्त करुणा से भर गया है। फर्क को समझ लेना। प्रेम का अर्थ है सबके सुख में भागीदार होना चाहते हैं। करुणा का अर्थ है सबके जीवन में जो दुख है उसमें हम हिस्सेदार हैं, इसकी प्रतीति इसका बोध, इसकी 'सफरिंग', इसकी पीड़ा। तो प्रेम में तो एक आनन्द है। करुणा में एक पीड़ा है। प्रेम में एक रस है, करुणा में एक घाव है। करुणा एक फोड़े की तरह दुखता घाव है। प्रेम एक फूल है। करुणा एक कांटे की तरह चुभन है। इसलिए प्रेम और करुणा समानार्थी नहीं हैं।

करुणा और दया तो बहुत ही भिन्न बातें हैं। करुणा का अर्थ है सबके दुख की प्रतीति और उस दुख में मैं भी जिम्मेदार हूं इसकी प्रतीति।

दया में ? दया में दूसरे के दुख की प्रतीति है लेकिन दूसरे अपने दुख के लिए जिम्मेदार हैं इसकी भी प्रतीति है। और मैं इसके दुख को दूर करने का थोड़ा बहुत उपाय कर रहा हूं, इसके अहंकार का भी बोध है। इसलिए दया करने वाला ऊपर खड़ा होता है। दया करने वाला दान दे रहा है, दया करने वाला कृपा कर रहा है, दया करने वाला बहुत सूक्ष्म अपमान कर रहा है जिसके साथ दया कर रहा है। दया शब्द बहुत बेहूदा और कुरूप है, बहुत अच्छा नहीं है। इसलिए भूल कर भी आप दया मत करना; क्योंकि जिस पर भी आप दया करेंगे उसका अपमान करेंगे ही। प्रेम करना; समझ में आ सकता है, लेकिन प्रेम में बड़ा फर्क है। जब प्रेम किसी को देता है तो ऐसा अनुभव नहीं करता है कि मैंने दिया। प्रेम सदा ऐसा ही अनुभव करता है कि जितना देना चाहिए था उतना नहीं दे पाया। एक मां से पूछें कि तूने अपने बेटे के लिए कितना किया, वह आंख से आंसू बहाने लगेगी और कहेगी कि मैं कुछ भी नहीं कर पायी। जो कपड़े मुझे देने थे वह नहीं दे पायी, जो खाने मुझे खिलाने थे वह नहीं खिला पायी, जो शिक्षा मुझे देनी थी वह मैं नहीं दे पायी। मां एक पूरी की पूरी फेहरिस्त बता देगी जो वह नहीं कर पायी। लेकिन जायें एक धर्मादा कमेटी के सेक्रेटरी से पूछें कि आपने गरीबों के लिए क्या किया ? तो वह पूरी फेहरिस्त बता देगा कि हमने यह किया, हमने यह किया। जो उन्होंने नहीं किया वह भी उसमें जोड़ देंगे कि हमने यह किया। दया करने वाला कहता है हमने यह किया। वह अहंकार की तृप्ति कर रहा है। प्रेम करने वाला कहता है हम यह नहीं कर पाये, जो करना था। उसका अहंकार टूट गया है। प्रेम अहंकार तोड़ जाता है, दया अहंकार मजबूत कर जाती है। यह सब शब्द बड़े अलग अलग हैं। ये समानार्थी नहीं हैं। इनके पीछे गहरे भेद हैं। दया से कोई क्रांति नहीं होती। इसलिए हिन्दुस्तान में दया पांच हजार साल से चल रही है, लेकिन क्रांति नहीं हुई है। दया पुरानी है। हम बड़े दयावान लोग हैं और जैसे कि दयावान लोग खतरनाक होते हैं, हम खतरनाक हैं। हम पांच हजार साल से दया कर रहे, दान कर रहे हैं। हम कह रहे हैं गरीब पर दया करो, बीमार पर दया करो। क्यों ? क्योंकि गरीब पर दया करने से आपको स्वर्ग की सीढ़ी उपलब्ध होगी।

करपात्री जी ने एक किताब लिखी है। बहुत अद्‌भुत किताब है। उसे खूब सबको पढ़ लेना चाहिए। उस किताब में उन्होंने समाजवाद का विरोध किया है और कहा है, समाजवाद के विरोध के कई कारण हैं। उसमें एक

कारण यह है कि समाजवाद में कोई गरीब नहीं रह जायगा, कोई अमीर न रह जायगा, तो फिर दया कौन करेगा? दान कौन करेगा? दया कौन लेगा? दान कौन लेगा? और बिना दान के मोक्ष असंभव है, इसलिए समाजवाद में फिर मोक्ष संभव न रह जायगा। अगर मोक्ष चाहिए, तो समाजवाद मत आने देना। अगर मोक्ष चाहिए तो गरीब को गरीब बनाकर रखना और सड़क पर भिखमंगे को खड़ा रखना; क्योंकि उसी के कंधे पर दया करके आप मोक्ष जा सकेंगे, और तो कोई रास्ता नहीं।

ये दया करनेवाले लोग हैं, इनमें करुणा है? इनकी बात सुनकर तो ऐसा लगता है कि करुणा का इनमें कहीं कोई पता नहीं। वे यह कह रहे हैं कि गरीब को रखना पड़ेगा, नहीं तो दान कौन लेगा? आज रूस में कोई दान तो नहीं लेगा। अगर आप किसी को दान देने जायेंगे तो हो सकता है पुलिस में पकड़कर रिपोर्ट लिखवा दे कि यह आदमी हमको दान देने की कोशिश कर रहा है। हमारा अपमान करना चाहता है। आज कोई भीख मांगने हाथ तो नहीं फैलायेगा आपके सामने। आज रूस में दानी होने का कोई उपाय नहीं। तो करपात्री जी ठीक कहते हैं। शास्त्रों में यही लिखा है कि बिना दान के मोक्ष नहीं क्योंकि दान सबसे बड़ा धर्म है। तो रूस में सबसे बड़े धर्म की तो जड़ कट गयी। तो वह ठीक कह रहे हैं। शास्त्र के हिसाब से बिल्कुल ठीक कह रहे हैं कि अगर मोक्ष को बचाना है तो गरीब को बचाओ, भिखमंगे, बीमार को बचाओ। बीमार रहेगा तब तो अस्पताल बना पाओगे और जब गरीब रहेगा तभी तो धर्मशाला काम आयेगी। और जब भिखमंगे भीख मांगेंगे तब दया करने वाले लोगों को मजा आयेगा, नहीं तो सब मुश्किल हो जायगा। नहीं तो सब कठिनाई हो जायगी। दया करने वाले में करुणा नहीं है, दया करने वाले में बहुत गहरी कठोरता और क्रूरता है। वह दया में भी रस ले रहा है। वह जब दो पैसे आपको दे रहा है तो हजार रुपये का अहंकार वापस खरीद ले रहा है। वह दो पैसे इसीलिए चिल्ला कर देता है, अखबार में खबर करके देता है, पत्थरों पर खोद कर देता है। धर्मशालाओं पर पत्थर लगा देता है कि मैंने दिये। उसे रस इसमें नहीं है कि कोई पीड़ित था, उसे रस इसमें है कि उसने किसी की पीड़ा दूर करने का बड़ा भारी काम किया है। दया क्रांति नहीं लाती, इसलिए भारत में क्रांति नहीं आ सकी। दया बिल्कुल क्रांति को रोकती है, क्योंकि दया भिखमंगे को दो पैसे दे देती है; लेकिन भिखमंगे क्यों पैदा होते हैं इसकी तलाश में नहीं जाती। और भिखमंगे को दो पैसे मिल जाते हैं तो भिखमंगा भी राहत अनुभव

करता है। वह भी उस सीमा पर नहीं पहुंच पाता कि दान देने वाले की गर्दन पकड़ ले और कहे कि दान नहीं लेंगे और कहे कि पहले हमारी जेब काटते हो और फिर हमको दान देते हो। वह कहेगा कि पहले हमें भिखमंगा बना देते हो और फिर दान देने आते हो। वह कहेगा कि पहले तो हमें चूस लेते हो और फिर हमारे लिए अस्पताल बनाते हो! जिसमें खून का दान चल रहा है, यह जाल कैसा है? नहीं, दया यह भी नहीं होने देगी। दया कांसोलेशन बन जाती है और गरीब को लगता है कि अमीर कितना दयावान है। अमीर को बचाने में दया ने जितना काम किया है उतना और किसी चीज ने काम नहीं किया। अमीर को बचाने में धर्मशालाओं ने जितनी आड़ की है, और मंदिरों ने, उतनी और किसी चीज ने नहीं की है। क्योंकि ऐसा लगता है कि कितना दयावान है अमीर, लेकिन यह नहीं दिखायी पड़ता है कि धन इकट्ठा करना क्रूरता है। एक लाख एक आदमी क्रूरता से इकट्ठा करता है, दस हजार रुपये दान करता है, फिर वह महान दानी हो जाता है। फिर हम उसको नमस्कार करते हैं कि वह परम दानी है। लेकिन कोई नहीं पूछता कि दान में जो धन दिया गया वह आया कहां से, वह आया कैसे?

नहीं, दया से क्रांति नहीं हो सकती, अहिंसा से भी क्रांति नहीं हो सकती, क्योंकि अहिंसा निगेटिव है। अहिंसा से क्रांति इसलिए नहीं हो सकती कि अहिंसा इतना कहती है कि दूसरे को दुख मत दो। तो कुछ लोग अहिंसक हो जाते हैं, वह दूसरे को दुख नहीं देते। लेकिन दूसरे के दुख को दूर करने के लिए वे कोई उपाय भी नहीं करते, दूसरे के सुख की कोई व्यवस्था भी नहीं करते। वे केवल हाथ अलग करके रास्ते से किनारे हट जाते हैं कि हम इस रास्ते पर न चलेंगे जहां दूसरे को दुख दिया जाता है। बस इतना ही वे करते हैं। वे नकारात्मक लोग हैं, जैसे कोई आदमी कहे कि दूसरे को बीमार मत करो। ठीक है, हम किसी को बीमार नहीं करेंगे, लेकिन दूसरे लोग बीमार हैं उनके लिए भी हम कुछ नहीं करेंगे क्योंकि हमें उनसे कोई संबंध नहीं है। हमने उनको बीमार नहीं किया है। किसी की आंख मत फोड़ो, यह ठीक है, लेकिन किन्हीं की आंखें फूटी हुई हैं, अंधे हैं, उनकी आंखों को ठीक करने का उपाय अहिंसा से नहीं चलता। अहिंसा की वृत्ति नकारात्मक है। हिन्दुस्तान में अहिंसा भी चल रही है कोई साढ़े तीन हजार साल से, लेकिन उससे भी कोई हल नहीं हुआ, क्योंकि उसने कुछ लोगों को सिकोड़ दिया बुरी तरह। उन्होंने सब तरफ से हाथ खींच लिए। वे पैर फूंक फूंक कर रखने लगे कि कोई कीड़ा जमीन पर न मर जाय। वे मुंह पर

पट्टियां बांधने लगे कि कहीं नाक की गरम हवा से कोई कीड़ा न मर जाय। वे रात करवट नहीं बदलते हैं कि कहीं कीड़ा न मर जाए। वे पानी छान के पीते हैं कि कहीं कोई कीड़ा न मर जाय, वे हरी सब्जी नहीं खाते हैं कि कहीं कोई कीड़ा न मर जाय। वे रात खाना नहीं खाते, कहीं कोई कीड़ा न मर जाय। उन्होंने सब तरफ से अपने को रोक लिया कि हिंसा न हो जाय। लेकिन जो चल रहा है दुख, हिंसा—उसे बदलने को वह कहीं भी नहीं जाते। और उसमें उन्हें डर लगता है कि बदलने जायं तो हिंसा न हो जाय। एक आदमी को घाव है और उसके घाव में कीड़े पड़ गये हैं। अहिंसक आदमी उसके घाव पर मलहम नहीं बांध सकता क्योंकि मलहम बांधने से कीड़े मर जाएंगे। वह अहिंसक आदमी कहेगा कि हमने तो घाव नहीं किया, आप जानें आपका काम जाने। हम कीड़े मारने की झंझट नहीं लेते। कलकते में मारवाड़ी जैन, खाटों में खटमल पड़ जाय, तो उनको मारते नहीं हैं। अहिंसक लोग हैं। लेकिन अगर खाट में कोई न सोये तो वे मर ही जायेंगे। तो एक रुपया दो रुपया देकर रात में आदमी किराये पर रख लेते हैं और उस खाट पर सुला देते हैं कि तुम इसपर सो जाओ। खटमल न मर पायें और तुमने अपना काम कर लिया, हमने दो रुपया दे दिया। तुमसे मुफ्त काम भी नहीं लिया। अहिंसा उनकी पूरी हो गयी। खटमल भी नहीं मरे और उनको खून भी पिलवा दिया, खून के पैसे भी चुका दिये। लीगल रास्ता खोज लिया, कोई झंझट नहीं रही उसमें।

अहिंसक आदमी जीवन के दुख को नहीं मिटाने आयेगा। उसकी सिर्फ चेष्टा इतनी है कि मैं दुख न दूं। लेकिन इतनी चेष्टा अधूरी है। इस से कुछ हो नहीं सकता। प्रेम करने वाले लोग भी सदा से रहे हैं। प्रेम सदा से है, प्रेम निरंतर रहा है। प्रेम सुख देना चाहता है, दूसरे को सुख देना चाहता है। अहिंसा से बहुत ऊपर है प्रेम। दूसरे को सुख देने की खोज करता है। लेकिन दूसरे को सुख देने की खोज काफी नहीं है जबतक कि दूसरे के दुख के बुनियादी कारणों में भी हमारा हाथ है इसका हमें पता न चल जाय। एक अपनी पत्नी को सुख देना चाहता है। वह प्रेम करता है उसे, लेकिन उसका पति होना भी उसकी पत्नी के दुख का एक हिस्सा है, यह उसे कभी दिखायी नहीं पड़ने वाला है। एक पति अपनी पत्नी को सुख देना चाहता है सब तरह का। वह उसे प्रेम करता है। वह उसे साड़ियां ला रहा है, गहने खरीद रहा है, मकान बना रहा है, बड़ी कारें खरीद रहा है, वह अपनी जिन्दगी लगाये दे रहा है उसको सुख देने के लिए। पत्नी सुख नहीं पा रही है। वह पूरी कोशिश कर रहा है।

लेकिन उस पति को अगर करुणा हो, प्रेम की जगह, और वह देख सके कि पत्नी का दुख क्या है, तो शायद उसका पति होना भी पत्नी के दुखों में एक कारण है। जब भी कोई किसी का मालिक बन जाता है तो दुख देने वाला हो जाता है। मालिक सदा ही दुख देता है और जब कोई किसी को बांध लेता है तो दुख देने वाला हो जाता है। और जब कोई किसी की परतंत्रता बन जाता है तो दुख देने वाला हो जाता है। और जब कोई किसी को 'पजेस' कर लेता है और मालकियत कर लेता है तब दुख देने वाला हो जाता है—यह उसे पता नहीं है। एक फूल को मैं प्रेम करता हूं, इतना प्रेम करता हूं कि मुझे डर लगता है कि कहीं सूरज की रोशनी में कुम्हला न जाय और मुझे डर लगता है कि कहीं जोर की हवा आये, इसकी पंखुड़ियां न गिर जायं और मुझे डर लगता है कि कोई जानवर आकर इसे चर न जाय और मुझे डर लगता है कि पड़ौसी के बच्चे इसको उखाड़ न लें—तो मैं फूल के पौधे को मय गमले के तिजोरी में बन्द करके ताला लगा देता हूं। प्रेम तो मेरा बहुत है लेकिन करुणा मेरे पास बिल्कुल नहीं है। मैंने पौधे को बचाने के सब उपाय किये धूप से बचा लिया, हवा से, जानवरों से। मजबूत तिजोरी खरीदी, उसको भी मेहनत करके बनाया, ताला लगाकर पौधे को बन्द कर दिया। लेकिन अब यह पौधा मर जायेगा। मेरा प्रेम इसे बचा नहीं सकेगा और जल्दी मर जायेगा। हो सकता था, बाहर हवाएं थोड़ी देर लगातीं और पड़ौसी के बच्चे हो सकता था इतनी जल्दी न भी आते और सूरज की किरणें फूल को इतनी जल्दी न मुर्झा देतीं; लेकिन तिजोरी में बन्द पौधा जल्दी ही मर जायेगा। प्रेम तो पूरा था, लेकिन करुणा जरा भी न थी। जगत में प्रेम भी रहा है, अहिंसा भी रही है, दया भी रही है, लेकिन करुणा नहीं। करुणा का अनुभव ही नहीं रहा है और करुणा का अनुभव आये तो हम जीवन को बदलेंगे, और करुणा से अगर दया निकले तो वह दया न रह जायेगी। उसमें कोई अहंकार की तृप्ति न होगी। और करुणा से अगर अहिंसा निकले तो वह निषेधात्मक न रह जायेगी, वह सिर्फ इतना न कहेगी कि दुख मत दो। वह इतना भी कहेगी—दुख मिटाओ भी, दुख बचाओ भी, दुख से मुक्त भी करो, सुख भी लाओ। और अगर करुणा से प्रेम निकले तो प्रेम मुक्तिदायी हो जायगा, बंधनकारी नहीं रह जायगा। अब तक का सारा प्रेम गुलामी लाने वाला सिद्ध हुआ है। सब प्रेम ने जंजीरें बांध दी हैं। हां, गरीब आदमी लोहे की जंजीर बांधता है, अमीर आदमी सोने की जंजीर। अगर करुणा से प्रेम निकलेगा तो वह मुक्ति लायेगा। मैं जिसे प्रेम करता हूं उसे मुक्त करूंगा, अगर मेरी करुणा भी उसके

साथ है। मैं जिससे प्रेम करता हूं उसके जीवन के संकटों को, कष्टों को, पीड़ाओं को भीतर की स्थितियों को समझूंगा, सहयोगी बनूंगा। मैं जिसे प्रेम करता हूं अगर वह किसी और को प्रेम करके सुखी होता हो तो मैं सुखी होऊंगा। क्योंकि जिससे मैं प्रेम करता हूं उसे मैं सुखी देखना चाहता हूं। लेकिन जिसे हम प्रेम कहते हैं वह बरदाश्त नहीं कर सकेगा। मैं जिसे प्रेम करता हूं अगर वह किसी की तरफ प्रेम की नजर से देख ले तो मैं उसकी गर्दन पकड़ लूंगा और मैं कहूंगा कि मैं तुम्हें प्रेम करता हूं। तुमने दूसरे की तरफ प्रेम की नजर से कैसे देखा? यह करुणा नहीं है, यह अत्यंत कठोरता है और प्रेम के नाम पर गहरी हिंसा है। इसलिए प्रेमी एक दूसरे के साथ जितने हिंसक हो जाते हैं उसका हिसाब लगाना मुश्किल है और जब प्रेमी हिंसक होते हैं तो उन जैसा हिंसक और कोई भी नहीं हो सकता है। और जब वे एक दूसरे के प्रति ईर्ष्या से भर जाते हैं तब वे जितना कष्ट जगत में पैदा करते हैं उतना कोई भी नहीं करता। नहीं, करुणा से अगर प्रेम निकले तो प्रेम मुक्तिदायी होगा, और करुणा से दया निकले तो निरहंकार होगी, और करुणा से अहिंसा निकले तो विधायक होगी, निषेधात्मक नहीं होगी। इसलिए मैंने करुणा पर जोर दिया है। वह सिर्फ शब्दों का ही फासला नहीं है, भीतर कोई दृष्टि है। इसलिए मैंने कहा—करुणा की छाया है क्रांति, अहिंसा की नहीं, तथाकथित प्रेम की नहीं, तथाकथित दया की नहीं।

★

एक मित्र ने पूछा है कि मैं निरंतर कहता हूं कि हम सब परमात्मा में, प्रभु में, सत्य में एक हो जायें। कहां है वह सत्य, कहां है वह प्रभु, कहां है वह परमात्मा, कैसा है वह?

किसको कहते हैं परमात्मा, इसे भी थोड़ा समझ लेना उचित है क्योंकि मनुष्य के जीवन में जो क्रांति लानी है उसमें अगर प्रभु की मौजूदगी न रही तो वह क्रांति बहुत गहरी न हो सकेगी। अगर उस क्रांति को गहरी करनी है और जड़-मूल तक ले जानी है तो उसमें प्रभु का हाथ और मौजूदगी बहुत जरूरी है। प्रभु विहीन क्रांतियां हो गयी हैं। असल में जिन्हें मैं कह रहा हूं क्रोध से निकली हुई क्रांतियां, वे प्रभु विहीन क्रांतियां हैं। और जिसे मैं कह रहा हूं करुणा से आने वाली क्रांति वह प्रभु की मौजूदगी को स्वीकार करके आने वाली क्रांति है। ऐसी क्रांतियां हो गयी हैं जिनमें ईश्वर को हमने स्वीकार नहीं किया है बल्कि क्रांतिकारी अक्सर ईश्वर को इन्कार करता रहा है। उसे ऐसा

लगता रहा है कि ईश्वर भी क्रांति में बाधा है। उसने ईश्वर को भी तोड़ देना चाहा है। वह ईश्वर पर भी क्रोधित हो गया है। उसे लगा है कि इतनी गरीबी है दुनिया में तो कहां है ईश्वर, कैसा है ईश्वर? इतनी पीड़ा है तो ईश्वर नहीं हो सकता है। उसने ईश्वर को भी पोंछ देना चाहा है। लेकिन पीड़ा और गरीबी और तकलीफ ईश्वर के कारण नहीं है, हमारे कारण है और ईश्वर की अनुकंपा इतनी है कि वह हमें सब तरह से स्वीकार किये हुए है। वह हमें भटकने के लिए भी और पाप करने के लिए भी स्वीकार किये हुए है। और स्वतंत्रता का कोई मतलब नहीं होता है। अगर ईश्वर हम सबको जन्म लेने के पहले ही चिट्ठी लिखकर दे दे और कहे कि आपको अच्छे काम करने की पूर्ण स्वतंत्रता है लेकिन बुरा काम करने की बिल्कुल स्वतंत्रता नहीं है। और वह हमसे कह दे कि आपको प्रेम की पूरी स्वतंत्रता है, जितना चाहो प्रेम करो, लेकिन घृणा करने की बिल्कुल स्वतंत्रता नहीं है तो क्या वह स्वतंत्रता स्वतंत्रता होगी ? अगर हमसे कहा जाय कि आपको संत बनने की पूरी स्वतंत्रता है, बनो। असाधु बनने की स्वतंत्रता नहीं है, तो संत बनने की स्वतंत्रता भी समाप्त हो जायगी। क्योंकि संत बनने की स्वतंत्रता असंत बनने की स्वतंत्रता से ही जुड़ी हो सकती है अन्यथा नहीं हो सकती। अगर हमसे कहा जाय कि आपको जागने की पूरी स्वतंत्रता है लेकिन सोने की नहीं, तो जागने की स्वतंत्रता फौरन खो जायेगी; क्योंकि जागने की स्वतंत्रता सोने की स्वतंत्रता के साथ ही जुड़ी है। अलग अलग नहीं हो सकती। आदमी को शुभ करने की स्वतंत्रता इसीलिए उपलब्ध है कि उसे अशुभ करने की भी स्वतंत्रता उपलब्ध है। और परमात्मा ने आदमी को इतना स्वतंत्र कर दिया है कि उसने अपने को सबके सामने मौजूद भी नहीं रखा है। यह भी परमात्मा की स्वतंत्रता का उपक्रम है। हम सब पूछते हैं—ईश्वर सामने क्यों नहीं है ? अगर ईश्वर सामने हो तो हमारी स्वतंत्रता में पूरी बाधा पड़ेगी। आप एक घर में चोरी करने गये और परमात्मा आपके साथ ही लगा हुआ है। वह आपके बगल में ही खड़ा हुआ है। ऐसे तो वह खड़ा ही हुआ है। लेकिन जिनको वह दिखायी पड़ जाता है कि खड़ा हुआ है उसकी चोरी मुश्किल हो जाती है। लेकिन हमको दिखायी नहीं पड़ता है इसलिए स्वतंत्रता है हम चोरी कर सकते हैं, और सोच सकते हैं कि कोई दिक्कत नहीं सबको धोखा दे दिया है !

मैंने सुना है, एक फकीर के पास कुछ युवक आये। उन्होंने कहा कि हम अज्ञात की खोज करना चाहते हैं। वह कहां है ? जैसा कि इस मित्र ने पूछा है कि कहां है वह ईश्वर, कैसा है वह प्रभु ? उन्होंने भी पूछा। उस फकीर ने

कहा, एक छोटा सा काम कर लाओ, फिर मैं तुम्हें बताऊंगा। चार शिष्य थे, उन्होंने एक एक कबूतर उनको दे दिया और कहा, ये ले जाओ और जहां कोई न देखता हो जल्दी से कबूतरों को मार कर वापस लौट आओ। एक शिष्य बाहर सड़क पर गया। दोनों तरफ देखा भरी दोपहरी थी, कोई भी नहीं था, लोग घरों में सोये पड़े थे। उसने कबूतर को मरोड़ा और भीतर वापस आ गया और कहा, यह लीजिये, कोई भी नहीं देख रहा था। दूसरा शिष्य सड़क पर गया। उसने सोचा कि सड़क पर कोई नहीं है लेकिन भरी रोशनी है, दोपहरी है। मैं मरोड़ूं और कोई आ जाय या खिड़की में से झांक ले। तो वह अंधेरी गली में गया जहां कोई द्वार न थे, बड़ी दीवालें थीं। गांव के किले की मजबूत दीवाल थी पत्थरों की। वह उसकी आड़ में गया। जब वह सब तरह निश्चित हो गया कि अब दूर मीलों तक कोई दिखायी नहीं पड़ता है तब उसने गर्दन मरोड़ी और वापस आकर गुरु को दे दिया। तीसरे शिष्य ने सोचा, दिन में कोई न कोई देख ही सकता है। प्रकाश देखने का माध्यम है। वह रात तक रुका। अपने घर के अंधेरे में भीतर द्वार बन्द करके उसने गर्दन मरोड़ी और लाकर गुरु को दे दिया। लेकिन चौथा शिष्य, महीने भर हो गया, कोई पता न चला। गुरु बहुत चिन्तित थे। अपने शिष्यों को कहते हैं, खोजो, कहां गया? महीने भर के बाद उसे एक जंगल में पकड़ा गया। वह करीब करीब पागल हालत में था। गुरु के सामने लाया गया। गुरु ने पूछा, वह कबूतर कहां है? वह हाथ में लिये था। उसने कहा, बहुत मुश्किल में डाल दिया। मैं अंधेरी से अंधेरी जगह में गया, लेकिन कबूतर की गर्दन पर जब हाथ रखा तो मैंने देखा कबूतर देख रहा है। तब मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गया। फिर मैंने बहुत तरकीबें खोजीं, कबूतर की आंख पर पट्टी बांध दी और एक घनघोर अंधेरे कटहरे में गया जहां कि पट्टी के भीतर से देखना क्या, पट्टी के बाहर से भी कबूतर को देखना संभव नहीं होता। वहां जाकर जब मैंने उसकी गर्दन मरोड़ी तब मुझे दिखायी पड़ा कि मैं देख रहा हूं। और गहरे गड्ढे में गया जहां हाथ को हाथ न सूझता हो और जब मैं उसे दबाने लगा तब मुझे अचानक प्रतीत हुआ कि परमात्मा देख रहा है। मुझे मुश्किल में डाल दिया है। यह काम नहीं हो सकता। कबूतर आप वापस ले लें। मैं बिल्कुल पागल हो गया। मैं वह जगह खोज रहा हूं जहां परमात्मा न हो। सब जगह घूम आया, जंगल, पहाड़, सब देख डाले, वह सब जगह है।

उस फकीर ने उन तीनों को जो कबूतर को मार लाये थे कहा कि तुम

भाग जाओ। तुम अदृश्य को नहीं खोज सकोगे। तुम्हारी आँखें बड़ी स्थूल हैं। तुम सूक्ष्म को न देख सकोगे। आंखों को थोड़ा सूक्ष्म करके आओ। यह युवक कुछ काम कर सकता है। इसकी आंखें सूक्ष्म हैं। यह किसी उपस्थिति को अनुभव करता है। कबूतर की भी उपस्थिति अनुभव करता है, अपनी भी और सब तरफ से रोक लेता है, तो भी इसे किसी की उपस्थिति मालूम पड़ती है। परमात्मा अद्भुत है कि उसने हटा लिया है अपने से हमको, हमसे दूर-अलग, अदृश्य ताकि हम पूरी तरह स्वतंत्र हो सकें, अन्यथा हम स्वतंत्र न हो पायेंगे। बेटा बाप के सामने सिगरेट नहीं पीता है, बगल के कमरे में जाकर पी लेता है। लेकिन अगर पता चला कि वहां परमात्मा मौजूद है तो किस कमरे में जाए, कहां छिपे, फिर बहुत मुश्किल हो जाय। और अगर निरंतर यह मालूम होने लगे कि दो आंखें सदा झांक रही हैं, हर जगह, हर कोने में, तब बहुत मुश्किल हो जाय। स्वतंत्रता असंभव हो जाय।

मनुष्य पूरी तरह स्वतंत्र हो सके इसलिए परमात्मा अदृश्य हो गया है। परमात्मा का अदृश्य होना मनुष्य को दी गयी पूरी स्वतंत्रता के आधारभूत कारणों में से है। लेकिन क्या मतलब है परमात्मा से ? कोई व्यक्ति, कोई पर्सनलिटी, कहीं कोई छिपा हुआ बैठा है। नहीं, इस भाषा में सोचने के कारण ही बहुत कठिनाई हो गयी है। इस भाषा में सोचने के कारण ही हमने मंदिर बना लिए हैं, मूर्तियां बना ली हैं, पूजा चल रही है, भजन-कीर्तन चल रहे हैं जिनका परमात्मा से कोई भी संबंध नहीं है, नहीं हो सकता है। ये हमारे गढ़े हुए परमात्मा हैं जो हमने अपनी कल्पना से गढ़ लिए हैं। परमात्मा का अर्थ है समग्र, दी टोटल, वह जो सारा जगत, सारा जीवन है उसका जोड़। खंड खंड हम देखते हैं। एक आदमी है, एक पौधा है, एक जमीन है, एक चांद है, एक पहाड़ है, एक सागर है। खंड खंड, अलग अलग हैं लेकिन सबका अस्तित्व गहरे में जुड़ा हुआ है और संयुक्त है। दस करोड़ मील दूर है सूरज, लेकिन अभी अगर ठंडा हो जाए तो सुबह फिर कोई पता न चलेगा कि कहां गये ! हम साथ ही ठंडे हो जायेंगे। दस करोड़ मील दूर जो है उसकी किरण हमें जिलाये हुए है, गरम किये हुए है। ऐसा नहीं है कि थर्मामीटर से फिर आप नापेंगे सूरज के ठंडे हो जाने पर. तो आपको शरीर ठंडा होता हुआ मालूम पड़ेगा। नहीं, थर्मामीटर भी ठंडा हो चुका होगा। वह भी गर्मी नहीं बतायेगा। आप भी ठंडे हो चुके होंगे और कोई नहीं होगा जो जान सके कि ताप है। तो सारी गर्मी दस करोड़ मील दूर से चली आ रही है। दस करोड़ मील दूर से हम बंधे हैं। एक फूल

खिल रहा है पृथ्वी पर। वह सूरज की किरणों से बंधा है। एक बीज अंकुरित हो रहा है, वह सूरज से बंधा है। लेकिन सूरज से ही बंधा है ऐसा नहीं है, गहरे से गहरे दूर से दूर तारे से हमारा संबंध है। उससे भी हम बंधे हैं। एक अनंत जाल है अस्तित्व का जिसमें सब जुड़े हुए हैं। फूल की एक माला कोई मेरे गले में डाल जाता है। फूल ही फूल दिखायी पड़ते हैं, भीतर का सूत नहीं दिखायी पड़ता है। लेकिन फूल अगर अलग अलग होते तो माला नहीं होती। भीतर कोई सूत है जो पिरोया हुआ है, इसलिए माला है।

यह सारा अस्तित्व पिरोया हुआ है, इस सारे अस्तित्व में हम एक-दूसरे के भीतर प्रवेश कर गये हैं। हमें ख्याल में नहीं आता। आप हैं, आपने कभी सोचा है कि आपके भीतर करोड़ों करोड़ों साल का अस्तित्व पिरोया हुआ है। एक छोटा बच्चा मां के पेट में निर्मित होता है तो चौबीस अणु पिता से आते हैं उसके पास, चौबीस अणु उसकी मां से आते हैं। पिता के चौबीस अणु में से उसके पिता के बाहर अणु होते हैं, उसकी मां के बारह अणु होते हैं। पिता के पिता के अणुओं में ६ उसके पिता के पिता के होते हैं, ६ उसकी मां की मां के होते हैं और यह सारे अणुओं की यात्रा अंतहीन चल रही है। आप आज ही अचानक पैदा नहीं हो गये, हजारों–लाखों साल की श्रृंखला की एक कड़ी हैं आप। एक लंबी श्रृंखला की कड़ी है जो जुड़ी हुई है। और ऐसा नहीं है कि आप पीछे से से ही जुड़े हैं––भविष्य में भी जोड़ जारी रहेगा। वहां भी यात्रा जारी रहेगी। आज आपकी बगिया में जो फूल खिला है वह अचानक नहीं खिल गया है। उसके पीछे की यात्रा अनंत है। और अब तो वैज्ञानिक सोचते हैं कि किसी न किसी दिन जब पहली दफा कोई भी जमीन पर आया होगा, तो वह पैदा कैसे हो गया होगा ? जरूर किसी दूसरे ग्रह-उपग्रह से उड़कर आया होगा या कोई दूसरे ग्रह-उपग्रह से किसी यात्री के साथ चला आया होगा। अभी हमारे यात्री चांद पर गये तो लौटकर हमने उनकी महीने भर परीक्षा की और जांच-पड़ताल की कि चांद से वे कोई कीटाणु तो नहीं ले आये। लेकिन चांद पर वे कुछ कीटाणु जरूर छोड़ आये होंगे जिसकी कोई परीक्षा नहीं हुई और हो सकता है चांद से हमारा संबंध टूट जाय, आगे न हो और वे कीटाणु विकसित होते रहें और करोड़ों साल में वहां एक प्राणी पैदा हो जाय। कभी न कभी किसी अंतहीन काल में इस पृथ्वी पर, किसी दूसरे ग्रह से जीवन के कोई पहले चरण इसी भांति आये होंगे। उनसे हमारा जोड़ है। अंतहीन श्रृंखला है, उससे हम जुड़े हैं। यह श्रृंखला बहुत दिशाओं में मल्टी डाइमेंशनल, बहु आयाम में फैली

हुई है। पीछे-आगे, चारों तरफ, नीचे-ऊपर सब तरफ जितनी दिशाएं हैं सब दिशाओं में हम जुड़े हुए हैं। उन सब दिशाओं के जोड़ पर हमारा छोटा सा बिन्दु का अस्तित्व है और इस अस्तित्व को हम कहते हैं 'मैं'। मैं कहने का अधिकार सिवाय परमात्मा को और किसी को भी नहीं हो सकता है, क्योंकि हम मैं कह भी न पायेंगे और बिखरने का क्षण आ जायगा। लेकिन सब बिखरता रहे, सब बनता रहे, जिसमें बिखरता है, और जिसमें बनता है वह है, वह है। वह न बिखरता है, न वह बनता है।

एक सागर है, उसपर लहरें बन रही हैं। अभी एक लहर उठी कितनी शान से, कितनी अकड़ से। आकाश को छूने की हिम्मत, आकांक्षा से। कितनी जोर से उछलकर उसने सागर के चारों तरफ देखा है और पास पड़ोस की छोटी लहरों से कहा हो, देखती हो, कौन हूं मैं? लेकिन जब वह कह रही है, देखती हो, कौन हूं मैं, तभी बिखराव शुरू हो चुका है। वापस गिरना शुरू हो गया है। वह कह भी नहीं पायी है और गिरना शुरू हो गया है। उसका कहना पूरा भी न हो पायेगा। दूसरी लहरें शायद सुन भी न पायेंगी और लहर खो जायेगी। सागर में लहरें उठती रहती हैं, खोती रहती हैं। आप ऐसा तो सोच सकते हैं कि सागर हो बिना लहरों के, ऐसा भी हो सकता है कि शांत हो, कोई लहर न हो, सागर हो। लेकिन ऐसा आप नहीं सोच सकते हैं कि लहरें हों बिना सागर के। समुद्र की छाती पर लहरें उठती, बनती, बिगड़ती रहती हैं। अगर हम लहर लहर को देखते रहे तो सागर का हमें कोई पता न चलेगा। हम सब लहर में जोड़ को देख लेते हैं इसलिए सागर का पता चलता है। परमात्मा का अर्थ है—वह जो अस्तित्व की अनंत अनंत लहरें है। उनको हम देखने, जोड़ने में समर्थ हो जायं तो परमात्मा का पता चलता है। और अगर समग्र को न देख सके, एक एक टुकड़े को देखते रहे तो हमें आदमियों का पता चल जायगा, पौधों का पता चलेगा, पत्थर का पता चलेगा, पहाड़ों का पता चलेगा; लेकिन परमात्मा का पता नहीं चलेगा।

परमात्मा है सबका जोड़। अगर सारे जगत के समस्त अस्तित्व को जोड़ा जा सके तो जो हिसाब आयेगा नीचे वह परमात्मा है। लेकिन वह पूरी तरह जोड़ा नहीं जा सकेगा क्योंकि वह अंतहीन और अनंत है। इसलिए हम सिर्फ 'कंसीव' कर सकते हैं, हम केवल भाव से अनुभव कर सकते हैं उस जोड़ का। लेकिन किसी दिन हम जोड़कर बता नहीं सकते कोई फार्मूला बनाकर, कि इतना रहा जोड़। इसके भी कुछ कारण हैं कि हम नहीं बता सकते। इसे थोड़ा सोच लेना

होगा, ऐसा कि आप भी उसमें ही होंगे। ऐसा नहीं कि आप इधर खड़े होंगे, उधर परमात्मा होगा! नहीं, जहां आपकी बुद्धि बिखर गयी तब जो शेष रह जायगा आपमें, आपके बाहर, आपसे दूर, आपके पास, भीतर-बाहर, यहां-वहां, सब कहीं जो शेष रह जायगा—वह परमात्मा है।

परमात्मा का दर्शन नहीं हो सकता। ऐसा नहीं कि आप उसका दर्शन कर लेंगे और नमस्कार कर लेंगे। हां, रामचन्द्र जी मिल सकते हैं, क्राइस्ट मिल सकते है, कृष्ण जी मिल सकते हैं, बुद्ध, महावीर मिल सकते हैं। परमात्मा नहीं मिल सकता। क्योंकि औरोंको आप अपनी ही कल्पना से पैदा कर सकते है, लेकिन परमात्मा आपकी कल्पना से पैदा नहीं हो सकता। जहां कल्पना हार के थक जाती है, विश्राम करने लगती है वहां उसका अनुभव शुरू होता है। और मैं कह रहा हूं कि इस परमात्मा की उपस्थिति अगर मौजूद रहे, तो ही वास्तविक क्रांति हो सकती है; क्योंकि तब हम अस्तित्व की जड़ों तक उतर जाते हैं और जड़ों से रूपांतरण होता है। प्रभु में जीने के अतिरिक्त और कोई क्रांति नहीं है, प्रभु से संबंधित होने के अतिरिक्त और कोई रूपांतरण नहीं है। प्रभु से संबंधित होने के अतिरिक्त न कोई क्रांति है, न कोई परिवर्तन, न कोई रूपांतरण, न कोई अनुभव, न कोई आनंद, न कोई आलोक, न सत्य, न कोई मुक्ति। इसलिए प्रभु पर जोर दे रहा हूं। इधर मेरे जो मित्र हैं, वह कहते हैं कि प्रभु को बीच में लाने की कोई भी जरूरत नहीं। अगर चल सकता बिना लाये तो ठीक था, लेकिन वह मौजूद है ही। उसे हटा सकते तो भी ठीक था, लेकिन वह हटता नहीं, वह मौजूद है ही। हां, जो देख नहीं रहे, उन्हें पता नहीं चलता है। जैसे अंधों की एक बस्ती हो और वे कहें कि प्रकाश को बीच में लाये बिना बात नहीं बनेगी और आंख वाला कहे कि मैं बीच में लाता नहीं, वह बीच में है ही। तुम्हें दिखायी नहीं पड़ता यह दूसरी बात है और तुम अंधे हो, फिर भी चलते प्रकाश में ही हो। अंधे कहें कि प्रकाश की बात ही बीच से हटा दो, तो भी वह आंखों वाला कहेगा— हटाने से कुछ फर्क नहीं पड़ेगा, प्रकाश बीच में है ही, और अच्छा है कि हम उसे जान ही लें, क्योंकि वह हमें टकराने से बचा सकेगा। हम उसे पहचान ही लें, क्योंकि वह हमारे रास्ते पर साथी बन जायगा। हम उसे देख ही लें, क्योंकि उसे देख लेने के बाद ही चल पायेंगे और ठीक से पहुंच पायेंगे। अंधे को प्रकाश नहीं दिखता, हमें परमात्मा नहीं दिखता। निश्चित ही किसी अर्थ में हम अंधे हैं। उस अंधेपन को तोड़ने का उपाय ही ध्यान है।

★

आचार्यश्री रजनीश के आगामी देश-व्यापी कार्यक्रम

दिनांक :	स्थान :	कार्यक्रम :	संयोजक :
२०, २१, २२ एवं २३ मार्च ७०	लुधियाना	सत्संग	श्री कपिल मोहन, जीवन जागृति केंद्र, क्वालिटी आइस क्रीम कं., इन्डस्ट्रियल एरिया, ओसवाल रोड, **लुधियाना.**
२४ मार्च	दिल्ली	—	श्री लाला सुंदरलाल, **दिल्ली-६.**
२, ३, ४ एवं ५ अप्रैल	अमरावती	सत्संग	श्री एस. एल. श्रीवास्तव, जीवन जागृति केंद्र, खापर्डे बगीचा, **अमरावती.**
१३, १४, १५, १६, १७ एवं १८ अप्रैल	बंबई	सत्संग	श्री ईश्वर बाबू, जीवन जागृति केंद्र, रूम नं. ५३, एम्पायर बिल्डिंग, डा. डी. एन. रोड, **बंबई-१** फोन : २६४५३०
१९ अप्रैल	कलकत्ता	प्रवचन	श्री जैन सभा, ७, शंभु मल्लिक लेन, **कलकत्ता-७.** फोन : ३३-१८४७.
७ मई	बंबई	—	श्री ईश्वर बाबू, **बंबई : १**
१८, १९, २०, २१ एवं २२ मई	सूरत	सत्संग	श्री चंद्रकांत पटैल, आसोपालव, बैंक ऑफ इंडिया के सामने, रायपुरा, **बड़ौदा-१.**
१७ मई	बंबई	—	श्री ईश्वर बाबू, **बंबई-१**
२३ मई	बंबई	—	श्री ईश्वर बाबू, **बंबई-१**
२, ३, ४ ५ जून	अमृतसर	सत्संग	श्री चमनलाल अग्रवाल, जीवन जागृति केंद्र, २५, कैनेडी एवेन्यू, **अमृतसर.**
१ जून	दिल्ली	—	श्री लाला सुंदरलाल, जवाहरनगर, **दिल्ली-६**
६ जून	दिल्ली	—	श्री लाला सुंदरलाल, **दिल्ली-६.**

Statement about ownership and other particulars about Newspaper 'JYOTI SHIKHA' to be published in the First issue every year after last day of February.

FORM IV

(See Rule 8)

1.	Place of Publication	Bombay
2.	Periodicity of its Publication	Quarterly
3.	Printer's Name Nationality Address	P. L. Maheshwari Indian Jeevan Jagruti Kendra, Empire Bldg., Room No. 53, Dr. D. N. Road, Fort, Bombay-1
4.	Publisher's Name Nationality Address	P. L. Maheshwari Indian Jeevan Jagruti Kendra, Empire Bldg., Room No. 53, Dr. D. N. Road, Fort, Bombay-1
5.	Editor's Name Nationality Address	Mahipal Indian, Vijay Mahal, D Road, Churchgate, Bombay-20 Prof. Arvind Indian Kamla Nehru Nagar, Jabalpur (M.P.)
6.	Name and address of individuals who own the newspaper and partners or shareholders holding more than one percent of the total capital.	Jeevan Jagruti Kendra, Empire Bldg., Room No. 53, Dr. D. N. Road, Fort, Bombay-1

I, P. L. Maheshwari, hereby declare that the particulars given above are true to the best of my knowledge and belief.

P. L. Maheshwari
Signature of Publisher

Date : 1-3-1970

मुद्रक प्रकाशक : श्री पी. एल. महेश्वरी, जीवन जागृति केन्द्र, एम्पायर बिल्डिंग, रूम नं. ५३, डा. डी. एन. रोड फोर्ट, बम्बई–१ मुद्रणस्थान : स्टेट्स पीपल प्रेस, बम्बई १ ।

जीवन जागृति केन्द्र, बंबई द्वारा प्रकाशित **आचार्यश्री रजनीश साहित्य**

हिन्दी साहित्य	मू. रुपया
साधनापथ	३–००
क्रांतिबीज	३–००
सिंहनाद	१–५०
अमृतकण	०–६०
अहिंसादर्शन	०–४०
मिट्टी के दिये	३–००
पथ के प्रदीप	४–५०
मैं कौन हूँ	२–००
कुछ ज्योतिर्मय क्षण	०–४०
नये मनुष्य के जन्म की दिशा	०–४०
सूर्य की ओर उड़ान	१–००
प्रेम के पंख	०–७५
सत्य के अज्ञात सागर का आमंत्रण	१–२५
अज्ञात की ओर	१–००
नये संकेत	१–७५
संभोग से समाधि की ओर	३–५०
क्रांति के बीच सबसे बड़ी दीवार?	०–३०
न आंखों ने देखा न कानों ने सुना	०–१५
क्रांति की नई दिशा नई बात	०–३०
अंतर्यात्रा	३–५०
अस्वीकृति में उठा हाथ	५–००

मराठी साहित्य	
साधनापथ	३–००
सिंहनाद	२–००
अहिंसादर्शन	०–५०
अमृतकण	०–५०
क्रांतिबीज	२–५०
प्रेमाचे पंख	०–७५

गुजराती साहित्य	मू. रुपया
साधनापथ	२–००
स्पेशल प्रति	३–००
क्रांतिबीज (भाषा हिन्दी)	२–५०
सिंहनाद	१–२५
अमृतकण	०–५०
अहिंसादर्शन	०–५०
माटी ना दिवा	३–००
पंथ ना प्रदीप	३–००
हुं कोण छुं	२–००
केटलीक ज्योतिर्मय क्षण	०–७५
नवा मनुष्य ना जन्म नी दशा	०–७५
सूर्य तरफनुं उड्डयन	१–००
सत्य ना अज्ञात सागर नुं आमंत्रण	१–५०
अज्ञात प्रति	२–००
नवा संकेत	१–७५

अंग्रेजी साहित्य	
पथ आफ सेल्फ रियेलायजेशन	२–२५
हू ऐम आई	३–००
फिलोसफी आफ नान–वायोलेन्स	०–८०
अर्दन लैंप्स	४–५०
सीडस् ऑफ रेव्होलुशनरी थॉटस्	४–५०
विंग्स् ऑफ लव्ह अॅन्ड रंडम थॉटस्	३–५०

पुस्तकें मिलने का पता :

जीवन जागृति केन्द्र,

एम्पायर बिल्डिंग, कमरा नं. ५३, १ ला मंजला, डॉ. डी. एन. रोड, फोर्ट बम्बई-१.

ज्योति शिखा

१६

मार्च १९७०

* मनुष्य के आध्यात्मिक पुनरुत्थान के लिए समर्पित *

जीवन जागृति केन्द्र